समभाव-समदृष्टि के

सबक़

दिनांक 06 अक्टूबर 2018 - 31 मार्च 2019

एकता का प्रतीक

प्रकाशक
सतयुग दर्शन ट्रस्ट (रजि.)
"वसुन्धरा" ग्राम भूपानी–लालपुर रोड फरीदाबाद–121002 (हरियाणा)
ई–मेलः info@satyugdarshantrust.org
website: www.satyugdarshantrust.org
© सर्वाधिकार सुरक्षित सतयुग दर्शन ट्रस्ट (रजि.)
ISBN : 978-93-85423-18-5

प्रथम संस्करण
अप्रैल, 2019

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार

★ महामन्त्र★

साडा है सजन राम,
राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है।

उसी को जानो,

मानो और वैसे ही

गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु,
शरीर नहीं है।

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं,

ज्ञान को अपनाओ ।

निमित्त में नहीं,

नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विवरण	पृष्ठ संख्या
अक्टूबर 2018		
1. दि: 07 का सबक़	सेवा-1	1
2. दि: 14 का सबक़	सेवा-2	8
3. दि: 21 का सबक़	सेवा-3	17
4. दि: 28 का सबक़	सेवा-4	25
नवम्बर 2018		
5. दि: 04 का सबक़	आओ बढ़ें लौकिकता से अलौकिकता की ओर...1	33
6. दि: 11 का सबक़	आओ बढ़ें लौकिकता से अलौकिकता की ओर...2	41
7. दि: 18 का सबक़	प्रभु मिलन का उचित मार्ग दर्शन	49
8. दि: 25 का सबक़	मौन-1	57
दिसम्बर 2018		
9. दि: 02 का सबक़	मौन-2	64
10. दि: 09 का सबक़	मौन-3 (वाचालता के दुष्प्रभाव)	71
11. दि: 16 का सबक़	आत्मनिरीक्षण	80
12. दि: 23 का सबक़	सजन-भाव अपनाने का आवाहन -1	89
13. दि: 30 का सबक़	सजन-भाव अपनाने का आवाहन - 2	98

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विवरण	पृष्ठ संख्या
जनवरी 2019		
14. दिः 06 का सबक़	जीवन उद्देश्य के प्रति पुरुषार्थ/उद्यम की प्रेरणा-1	105
15. दिः 13 का सबक़	जीवन उद्देश्य के प्रति पुरुषार्थ/उद्यम की प्रेरणा-2	112
16. दिः 20 का सबक़	जीवन उद्देश्य के प्रति पुरुषार्थ/उद्यम की प्रेरणा-3	118
17. दिः 27 का सबक़	जीवन उद्देश्य के प्रति पुरुषार्थ/उद्यम की प्रेरणा-4	124
फरवरी 2019		
18. दिः 03 का सबक़	जीवन उद्देश्य के प्रति पुरुषार्थ/उद्यम की प्रेरणा-5	131
19. दिः 10 का सबक़	आत्मनिरीक्षण	137
20. दिः 17 का सबक़	विवेक सम्पन्न होकर जीवन पथ पर प्रशस्त होने का प्रोत्साहन	142
21. दिः 24 का सबक़	आशा-तृष्णा	150
मार्च 2019		
22. दिः 03 का सबक़	वितृष्णा	156
23. दिः 10 का सबक़	हुक्म की महानता व महत्ता -1	162
24. दिः 17 का सबक़	हुक्म की महानता व महत्ता -2	170
25. दिः 24 का सबक़	हुक्म की महानता व महत्ता -3	177
26. दिः 31 का सबक़	परमपद पाने हेतु हुक्म की महानता व महत्ता -4 (वचनबद्धता)	188

दिनाँक 7 अक्तूबर 2018 का सबक़

सेवा-1

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,
उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों जैसा कि हम सब जानते हैं कि परमधाम पहुँचना हमारे जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है जिसके लिए पहले निष्कामी और फिर ब्रह्मज्ञानी बनना आवश्यक है। ऐसा करने पर ही सजनों हम जोत से मेल खा सकते हैं और कई जन्मों की हारी हुई बाजी जीत सकते हैं। इस संदर्भ में इसी निष्काम भाव पर मजबूत करने के लिए सजनों सच्चेपातशाह जी ने सेवा का विधान रखा है और उसे भली-भांति संपादित करने हेतु कुछ नीति-नियम रखे हैं। याद रखो जो आडम्बर मुक्त इन नीति-नियमों पर खरा उतरता है उसी निष्कामी की सेवा यानि भक्ति स्वीकार्य होती है और वह पहले निष्काम व फिर ब्रह्मपद को प्राप्त कर परमधाम पहुँच विश्राम को पा सकता है। इस तथ्य के दृष्टिगत सजनों हमें भी निष्काम भाव से सेवा करने के महत्त्व को समझना है। आओ आज इसी विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं।

साधारण भाषा में सेवा से तात्पर्य किसी पूज्य/आदरणीय व्यक्ति अथवा स्वामी को सुख या आराम पहुँचाने के लिए किए जाने वाले काम से लिया जाता है

या फिर किसी की उन्नति या भलाई या पालन-पोषण आदि के लिए किया जाने वाला कार्य भी सेवा कहलाता है परन्तु धार्मिक विचार से ईश्वर की उपासना/आराधना/नाम जपना/पूजा-पाठ या किसी लोक उपयोगी वस्तु, विषय, कार्य आदि में रुचि होने के कारण उसके हित, उन्नति, आदि के लिए किए जाने वाला काम सेवा कहलाता है। यहाँ स्पष्ट कर दें कि ईश्वर कोई भौतिक रूपाकार नहीं है, इसलिये परिचर्या स्तर पर उसकी सेवा सम्भव नहीं। अतः मन से उसके प्रति समर्पण और शरणागति को ईश्वर सेवा माना जाता है। इसलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

दिन रात मैं सेवा दे विच राहवां, संसार दे विच न फँस जावां।।

इसके अतिरिक्त कोई-कोई नौकरी को भी सेवा मानता है। यद्यपि नौकरी के बदले हमें वेतन प्राप्त होता है तथापि यदि मनुष्य कर्म करता हुआ अपना कर्त्तव्य नेक-नीयत तथा ईमानदारी से पूरा करता है तो वह सेवा में शामिल होता है। पूजा, आश्रय, शरण, रक्षा, परिचर्या, खिदमत, नौकरी, कर्त्तव्य, जीविका, विनम्रता पूर्वक कार्य करना आदि सब सेवा के पर्यायवाची हैं।

स्पष्ट है सजनों बिना किसी भेदभाव व मान-अपमान के प्राणी मात्र का उपकार करने, उसकी पीड़ा हरने व उसे सुख पहुँचाने के लिये किया गया निःस्वार्थ कार्य, सेवा कहलाता है। सेवा की मुख्य रूप से दो दिशाएँ हैं - सकाम सेवा और निष्काम सेवा। इसे सप्रयोजन और निष्प्रयोजन सेवा भी कह सकते हैं। सकाम सेवा कोई कामना या वासना की पूर्ति हेतु फल की इच्छा से की जाती है और निष्काम सेवा बिना किसी कामना या इच्छा के यानि फल की भावना से रहित होकर व परोपकार की भावना से ओत-प्रोत होकर अकर्त्ता भाव से की जाती है। वस्तुतः निष्प्रयोजन और निष्काम सेवा ही सेवा की सही दिशा है। इस आशय से संसार में बिना किसी उपलब्धि की आशा से लोगों का हित करना तथा अपना स्वार्थ त्याग कर व उसके निमित्त दुःख सहकर भी दूसरे को सुखद बनाने का प्रयत्न करना सेवा कहलाता है। मूल रूप में इसी सेवा का महत्त्व है और इसी के द्वारा यश-कीर्ति की प्राप्ति होती है।

इस संदर्भ में सजनों युगों-युगान्तरों में सत्य-धर्म के प्रतीक, अजर-अमर सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के निष्काम व अनन्य सेवा भाव का साक्षात् उदाहरण हमारे प्रत्यक्ष ही है। उनके जीवन चरित्र से प्रेरणा ले सजनों हमें भी निष्कामता से प्रभु की चरण-शरण में जाकर, तन-मन-धन से उनके प्रति समर्पित हो जाना है और कर्त्तव्यपरायणता से उनकी आज्ञाओं का सत्यता से धर्मसंगत पालन करते हुए उस प्रभु को रिझाना है। इस तरह प्रभु की समीपता प्राप्त कर व उनके प्रिय बन उनकी चालें पकड़नी हैं व ब्रह्म व ब्रह्मांड का ज्ञान प्राप्त कर, ब्रह्मज्ञानी अर्थात् परमेश्वर सम बन अमर पद को पाना है। निःसंदेह सजनों परमेश्वर सम बनने हेतु हमें 'विचार ईश्वर आप नूं मान', समभाव नजरों में करना है और सजन वृत्ति पकड़ परस्पर समदर्शिता अनुरूप सजनता का व्यवहार करते हुए, नितोनित अपना आत्मनिरीक्षण करते जाना है। इस तरह भाव-स्वभावों की तरफ से अपने आप को ठीक वैसे ही अर्थात् प्रभु सम श्रृंगारित करने का अदम्य पुरुषार्थ दिखाना है अर्थात् अपनाए हुए स्वार्थपर चलन का त्याग कर वैसी ही रहणी-बैहणी अपना कर तेजोमय हो जाना है और अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकाशित करने के लिए, समभाव-समदृष्टि का सबक़ अपना सजनता का प्रतीक बन जाना है। सेवा के इसी प्रारूप को स्पष्ट करते हुए सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी सच्चेपातशाह जी कहते हैं:-

हरदम ध्यान मैं लावां तेरा, हटी विसूचिका मिट गया अंधेरा,
दिन रात करां मैं तेरी सेवा, चरणां विच प्रेम बढ़ावां,
जी मैं एहो वर्ताव दिखावां, जी मैं ऊपर फुल बरसावां।।

इस महत्ता के दृष्टिगत सजनों सेवा निष्कामता/निःस्वार्थ भाव से निष्पक्ष होकर प्रसन्नता से की जानी चाहिये, रो-झुखकर नहीं। इस संदर्भ में याद रखो सेवा कभी सशर्त या सशुल्क नहीं होती। सच्ची सेवा मनुष्य की जाति, गोत्र, धर्म, देश, सम्पत्ति आदि का विचार नहीं करती। वह तो सेव्य की आवश्यकता मात्र पर दृष्टिपात करती है और उसके अभाव को दूर करने, पीड़ा हरने के लिये तत्काल तत्पर हो जाती है। इस संदर्भ में याद रखो सेवा में प्रति-प्राप्ति या मान प्राप्ति की इच्छा की अपेक्षा निष्कामता की पावन भावना

रखने से, मन में एक ऊँचा संकल्प काम करता है तथा मनुष्य तन, मन या धन जैसे भी सम्भव हो, दूसरे के दुःख क्लेश को काटने या घटाने का प्रयास करता है, इस प्रकार की भावना से उत्प्रेरित कार्य ही वास्तव में सेवा कहलाता है।

सेवा की इसी महत्ता के दृष्टिगत धार्मिक ग्रन्थों में सेवा को धर्म बताकर इसका बहुत गुणगान हुआ है यानि निष्काम सेवा को सर्वोच्च मानवीय धर्म माना गया है। गुरुमत के अनुसार मन के विषय-विकारों को संयमित करना तथा परमात्मा की रजा में राजी रहते हुए सदा संतुलित रहना सबसे बड़ी मानसिक सेवा है। अन्य शब्दों में शब्द गुरु अर्थात् अंतर आत्मा की आवाज़ जो मार्ग सुझाए, उसपर विवेकशीलता से अग्रसर रहना और मन को प्रभु में लीन रखते हुए यानि संकल्प रहित व शांत रखने हेतु, लोक कल्याणार्थ तन-मन-धन से जुटना ही सच्ची-सेवा है।

इस तथ्य से सजनों ज्ञात होता है कि सेवा मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति है अर्थात मनुष्य का एक ऐसा स्वभाव सेवा है जो शारीरिक, सामाजिक अथवा आर्थिक स्तर पर निरंतर किसी न किसी रूप में तल्लीन रहता है। इस तरह सेवा चरम मानवीय मूल्य है। इसमें केवल वही जुट पाता है, जो निराभिमान हो, जिसका हृदय संवेदनशील व उदार हो, चित्त में करुणा, सहानुभूति, दया, सहयोग व परोपकार आदि का भाव हो व जो पर-दुःखकातर यानि लोक-कल्याण हेतु सेवा परायण हो व अपनी पूजा-मानता न कराता हो। याद रखो मानव मात्र के प्रति मनुष्य में जितनी इन सद्गुणों की प्रधानता होती है, वह उतना ही सेवा-भाव प्रवण होता है। इसके विपरीत संकीर्ण हृदय, ओछा, निर्दयी, कठोर व्यक्ति या अहंकारी सेवा नहीं कर सकता। अन्य शब्दों में व्यक्तिगत अहं व स्वार्थ भावना से ऊपर उठने पर ही मानव- परिवार, समाज और सकल मानवता की सेवा में यथा अवसर तन-मन-धन से जुट पाता है, और उसमें उदारता, व्यापकता बढ़ पाती है। इस का चरम रूप तब देखने को मिलता है जब वह पीड़ित मानवता के अतिरिक्त पशु-पक्षियों तक की पीड़ा मुक्ति में लग जाता है। सेवा का यह चराचर व्यापी विस्तार जिसके मूल में मानवीय करुणा होती है, ही सेवा भाव कहलाता है।

सेवा मन, वचन, कर्म और धन सभी प्रकार से की जा सकती है। तन की सेवा में संकोच-त्याग, मन की सेवा में संकीर्णता-त्याग और धन की सेवा के लिये लोभ-त्याग की आवश्यकता रहती है। इसके अतिरिक्त भक्ति भाव में निष्काम सेवा का विशेष स्थान है। हकीकत में निष्कामता से शारीरिक, मानसिक व आत्मिक रूप से पीड़ित दुःखी मानवों की निष्काम सेवा ही परमात्मा की सेवा है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में लिखा हुआ है:-

निष्कामी तेरा भगत कहावे, किस नूं पूजां ते किस नूं न पूजां

याद रखो परमात्मा कोई पात्र नहीं, जिसके पाँव तथा टाँगें दबाकर हम शारीरिक सेवा (परिचर्या) कर सकें। धन भी उसे नहीं चाहिये। इस दिशा में निःस्वार्थ भाव से उसकी सृष्टि के ज़रूरतमंद प्राणियों की सेवा ही परमात्मा की सेवा कहलाती है। इस संदर्भ में जैसा कि कहा भी गया है कि परमात्मा ने प्राणी जगत को अपने ही रूप में बनाया है अर्थात् परमात्मा स्वयं चराचर जीवों में भासता है। इसका यही अर्थ निकलता है कि परमात्मा की सेवा करने के लिये निष्काम भाव से प्राणी जगत की सेवा करनी चाहिये। परमात्मा के बनाये जीव-जन्तु, प्रकृति एवं मूल तत्त्व, सबकी रक्षा का प्रयत्न, उनके दुःखों को दूर करने के प्रयास, सब परमात्मा की सेवा में शामिल हैं। परमात्मा ने अपने बनाये जीवों को जीवन देने के लिये जल, वायु, सूर्य, चाँद तथा अन्न उपजाने को धरती प्रदान की है। इन सबके प्रति संयम, सुरक्षा और प्रेम भावना भी परमात्मा की सेवा है।

श्रमशीलता, उदारता और सहिष्णुता सेवा को विकसित करने के मुख्य साधन हैं। सेवा में श्रम की विशेष आवश्यकता होती है। जो सहनशील व श्रमशील नहीं है, वह किसी की सेवा नहीं कर सकता क्योंकि सेवा करने में जिस श्रम की आवश्यकता होती है उस श्रम को करने की इच्छा और साहस का अभाव श्रमहीन में सदा बना रहता है। उदार हृदय वाले मनुष्य किसी भी दीन-दुःखी या असहाय व्यक्ति को देखकर उसकी पीड़ा या अभाव का निवारण करने के लिये तत्काल तत्पर हो जाते हैं। जबकि कठोर हृदय वाले अनुदार व अहंकारी लोग किसी की भी सेवा करने को तैयार नहीं होते।

आत्म-गौरव नष्ट न होने देना सेवा की प्रथम सीमा है। निष्काम सेवा में आत्म-गौरव नष्ट नहीं होता किन्तु किसी लाभ की आशा में की गई सकाम सेवा आत्म-गौरव को नष्ट कर देती है। सेवा की एक अन्य सीमा उसका प्रदर्शन न करना भी है यानि सेवा करो पर उसका विज्ञापन न करो। जिसकी सेवा की है उसपर बोझ मत डालो, नहीं तो आपकी सेवा पुनः स्वीकार करने में उसे संकोच होगा और पिछली सेवा के लिये जो उसने स्वीकार की थी, उसके मन में पछतावा होगा।

स्वार्थपरता सेवा के पथ की सबसे बड़ी बाधा है। स्वार्थी मनुष्य कभी किसी की सेवा नहीं करता क्योंकि वह केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति में लिप्त रहता है। इससे सेवा-पथ बाधित होता है। इसके अतिरिक्त यह भी जान लो कि सेवा कार्य करने में सेवक को निश्चित रूप से कष्ट उठाना पड़ता है। सब लोग यह कष्ट उठाने को तैयार नहीं होते। अतः एक निष्काम सेवक को लक्ष्य में व्यवधान उत्पन्न करने वाली इन कठिन व कष्टप्रद विविध बाधाओं से नहीं घबराना चाहिए अपितु आत्मविश्वास, धैर्य व शांति-शक्ति से इन सबका सामना करते हुए तथा अकर्त्ता भाव में स्थिर रहते हुए हर मुश्किल से उबर जाना चाहिए।

उपरोक्त विवेचना से सजनों स्पष्ट होता है कि वास्तव में सेवा वह मानवीय कार्य है जो बिना किसी निजि स्वार्थ के आत्मतुष्टि और परतुष्टि के लिये किया जाता है। यह बड़ी ऊँची भावना है। इस ऊँचाई तक पहुँचने वाला निःस्वार्थी, निराभिमानी तथा निःसंकोची होता है। इसलिए वह लोक-लाज या व्यक्तिगत स्वार्थ अथवा लोभ को कभी नहीं अपनाता। उसका लक्ष्य यानि निशाना प्राणी मात्र के कष्टों को हर कर उनका दुःख निवारण करना है तथा उद्देश्य होता है परमात्मा की शरण। इसीलिये सच्चे मन से मनुष्यता की सेवा करने वाला जीवन परमात्मा की समीपता का अधिकारी होता है। याद रखो सेव्य के प्रति निष्ठा और व्यापक दृष्टि सेवा में अनिवार्य है। इस संदर्भ में भगवान के प्रति जितनी निष्ठा गहरी होती है, इंसान उतना ही अधिक मन लगाकर उसकी रचाई हुई इस सृष्टि की निष्काम भाव से सेवा करता है। इस प्रकार सेवा का क्षेत्र जितना व्यापक होता है, वह उतनी ही महान समझी

जाती है, क्योंकि सेवा के इस उदार परिसर में मनुष्य ही नहीं अपितु जीव मात्र भी सम्मिलित होते हैं। हकीकत में ऐसी निष्काम सेवा से ही हृदय शुद्ध होता है, अहं-भाव दूर होता है, मन-चित्त एकाग्र होता है, बुद्धि विवेकशील बनती है तथा सर्वस्व परमात्मा का दर्शन करने का आभास होने से बहुत शान्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार सच्चा आनन्द, सच्ची शान्ति केवल अटल सेवाव्रत से ही प्राप्त होती है। यही नहीं सेवा मनुष्य को विश्वसनीय बनाती है और सत्य-धर्म के निष्काम मार्ग पर अग्रसर रह, समाज में सेवा के महत्त्व को प्रतिष्ठित करती है।

सारतः सजनों याद रखो सेवामार्ग भक्ति मार्ग से भी ऊँचा है। अतः लोक कल्याणार्थ सेवा-भाव रखो और स्वार्थ सिद्धि को त्याग कर अपने को यानि अपनी इच्छाओं व तन-मन-धन को परमार्थ की वेदी पर बलि चढ़ाने का मादा अपने अन्दर उत्पन्न करो। इस संदर्भ में याद रखो सेवा में पैसे की ज़रूरत नहीं होती, ज़रूरत है अपनी संकुचित सोच, अपने अहंकार को त्याग कर प्राणी मात्र से एकरूप होने की यानि जितनी वृत्ति निरहंकार रहेगी, उतनी सेवा की कीमत बढ़ेगी। इस तरह जब मनुष्य संपूर्ण रूपेण निरहंकार होकर अपने को श्री भगवान के यंत्र रूप में अनुभव करता है और एकमात्र भगवत् सत्ता ही विराजित है- इस प्रकार का बोध रखता है, केवल तभी वह यथार्थ रूप में सेवा और कल्याण कर्म में अपने को लगा पाने का योग्य अधिकारी बन पाता है और निष्कामी कहलाता है।

सबकी जानकारी हेतु सेवा के विषय में इससे आगे बातचीत आगामी सप्ताह करेंगे।

दिनाँक 14 अक्तूबर 2018 का सबक़

सेवा-2

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,
उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत सप्ताह सजनों हमने जाना कि हक़ीकत में सेवा क्या है? सेवा कितने प्रकार की होती है? हमें किस भाव से सेवा करनी चाहिए तथा उससे क्या प्राप्ति है?

इस प्रकार सजनों हमें स्पष्ट हुआ कि सेवा जीवन का अनुपम सौन्दर्य व श्रृंगार है जिसे बेचा या खरीदा नहीं जाता अपितु सहज स्वभाव से, बिना किसी इच्छा और भेद-भाव के, निःस्वार्थ व त्याग भावना से साधा जाता है। सेवा धर्म का मूल व प्रेम की पराकाष्ठा है जिसमें सद्भावना, विश्वास, पवित्रता, त्याग व श्रद्धा भाव निहित है। सेवा का वास्तविक उद्देश्य निष्काम रास्ता पकड़ कर ध्यान को साधना है। इस तथ्य के दृष्टिगत सजनों 'सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ' में वर्णित परमेश्वर के इन शब्दों को अपना लोः-

साधना करो ते लावो ध्यान - रस्ता पकड़ो निष्काम।
क्योंकि इस से
न रहेगी गरूरी -न रहेगी मगरूरी, रस्ता पकड़ो निष्काम।

इसी संदर्भ में सजनो अब आगे जानो कि सेवा एक फ़र्ज अदा है जो सबके प्रति हँसकर करना है, रो-झुखकर नहीं। इसलिए 'सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ' हमें प्रत्येक प्राणी की सेवा हँसकर व श्रद्धापूर्वक, निष्काम भाव से करने का निर्देश दे रहा है। जानो इस प्रकार की हुई सेवा के माध्यम से ही सजन एकात्मता व आत्मीयता की भावना से संचारित हो आत्मोद्धार के लिये आवश्यक आत्मोन्नति कर सकता है और लघुता से प्रभुता की ओर बढ़ सकता है यानि ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर जनचर-बनचर, जड़-चेतन में एक दर्शन कर सकता है और उस दर्शन में अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्य का निरुपण कर, अपने जीवनोद्देश्य को प्राप्त हो सकता है। निःसंदेह इस महत्ता के दृष्टिगत सजनों आपके अन्दर भी ऐसा निष्काम सेवक बनने की अभिलाषा जाग्रत हुई होगी। यदि ऐसा ही है तो सर्वप्रथम जानो कि ऐसा सेवक बनने हेतु आपने अपने अन्दर किन गुणों का विकास करना है:-

1. ईश्वर द्वारा प्रदत्त हर प्रकार की सेवा को उसी के निमित्त, नीतिसंगत बिना किसी कामना अथवा आसक्ति या इच्छा के निष्कामता से करना है। इस प्रकार सेवा करने से चित्त की सतत् शुद्धता बनी रहती है जो अपने आप में मोक्ष की निशानी है। याद रखो जो सजन सेवा के दौरान ऐसा बना रह पाता है वही सजन निष्कामी कहलाता है और बिना किसी भक्ति-भाव के ही सेवा द्वारा जीवन लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है।

2. सेवा के दौरान सदा सन्तोषी बने रहना है यानि किसी बात की चिन्ता, अपेक्षा, परवाह या शिकायत नहीं करनी। इस तरह सदा प्रसन्नचित्त रहते हुए सेवा के दौरान लोभ-लालच, चोरी-ठगी व नाना प्रकार के भौतिक प्रलोभनों से बचे रह सदा सन्तुष्ट बने रहना है।

3. सेवा के दौरान धैर्ययुक्त यानि सहनशील बने रहना अति आवश्यक है। कहने का आशय यह है कि सेवा करते समय चित्त की स्थिरता बनाये रखनी है। किंचित् मात्र भी चंचलता या उतावलेपन का भाव न हो, न ही किसी भी कारण चित्त में उद्वेग यानि घबराहट, आकुलता, आवेश या भय उत्पन्न हो। इस प्रकार की गई सेवा से मन-चित्त स्थिर, शान्त व निर्विकार बना रहता है

और कष्ट या हानि पहुँचाने वाले अथवा अनुचित कार्य करने वाले के प्रति भी क्रोध जैसा उग्र भाव व ईर्ष्या-द्वेष, वैर-विरोध, तेरी-मेरी का भाव उत्पन्न नहीं होता। जानो ऐसा सुनिश्चित करने पर इंसान सदा सचेतन अवस्था में बना रहता है।

4. सत्य चानणा है व झूठ अंधेरा है, इस बात को स्मरण रखते हुए, सेवा के समय सदा सत्-वादी व स्पष्टवादी बने रहना है यानि सर्वव्यापक भगवान को हाज़िर-नाज़िर मानते हुए, वास्तविकता के अनुरूप जो जैसे हो अथवा होना चाहिए उसे वैसा ही यथार्थता अनुरूप व्यक्त कर पारदर्शी बने रहना है। किसी प्रकार की ठैं-ठैं ड्यूटी के समय नहीं करनी। ऐसा करने से बिना किसी मोह आसक्ति, दबाव या भेदभाव के सदा न्यायप्रिय बने रहोगे व द्वि-द्वेष, झूठ-छल-कपट, निंदा-चुगली आदि से बचे रह पाओगे। इस संदर्भ में सजनों कहा गया हैः-

सत-सत बोलना सीखो - सच करो वर्त्ताव।
'सजन शब्द चलाओ सजनों, सजन करो ज़बान।'
'सजन होवे संकल्प, एहो वृत्ति पकड़ो सजन इन्सान।'

5. सेवा रो-झुखकर नहीं अपितु अपना कर्त्तव्य अथवा धर्म मानकर करनी है और उसको सक्षमता से निभाने के लिये किसी के आदेश व निगरानी की आशा की ताक में नहीं रहना। इस प्रकार सेवा को निज धर्म समझ कर इसे अपनी प्रकृति के अंतर्गत सम्मिलित कर लेना है। याद रखो इस प्रकार सेवा करने वाला सजन अपना हर कर्म ईश्वर के निमित्त समर्पित कर, अकर्त्ता भाव से करता है और परोपकारिता के भाव से ओत-प्रोत हो कुल परिवार, समाज व संसार के प्रति अपने कर्त्तव्यों व दायित्वों का पालन मन-चित्त लगाकर करने से नहीं घबराता। अन्य शब्दों में उसे कभी भी उसके कर्त्तव्य का बोध कराना नहीं पड़ता, न ही वह कर्त्तव्य पालन से पलायन करता है अपितु वह तो समाज की रक्षा और सुख शांति में वृद्धि करने हेतु प्रत्येक कार्य धर्मसंगत यानि उचित-अनुचित का विचार करके करता है और अपने तन-मन-धन को इस कर्त्तव्य पालना पर वारने से भी नहीं सकुचाता।

6. जीवन की हर परिस्थिति यानि जन्म-मरण, रोग-सोग, खुशी-गमी, मान-अपमान, अमीरी-गरीबी में समचित्त बने रह, प्रदत्त सेवा पर ईश्वर के कर्त्तव्यपरायण सपुत्र की भांति निःसंकोच होकर निर्भयता से डटे रहना है। भयवश, वड-छोट, अपने-पराये, दिखावे और दबाव की भावना से प्रेरित होकर, किसी के घेरे में या किसी अन्य के पंजे में भी नहीं आना अपितु एकरसता व ठहराव में बने रहना है। जानो निष्कामता व निर्भयता से सेवा करने वाला योग्य व्यक्ति ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने का उचित अधिकारी सिद्ध होता है।

7. सेवा करते समय आपकी रैहणी-बैहणी अर्थात् मन-वचन व कर्म द्वारा किए जाने वाले आचार-विचार व व्यवहार से कंचनता झलकनी चाहिए। इस हेतु 'हथ कार वल व चित्त यार वल' रखो यानि प्रदत्त सेवा करते समय निरंतर नाम-अक्षर चलाते रहो और नम्र भाव से सबसे मधुरता एवं प्रियता से पेश आओ। परस्पर एकता और प्रेम का व्यवहार करो। बोल-चाल नर्म हो यानि कठिन न हो। सब सजनों के चेहरे पर मुस्कुराहट हो। इस तरह अपनी जिह्वा स्वतन्त्र, संकल्प स्वच्छ व ख़्याल अफुर रखो। इस संदर्भ में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

'सजनों बात करो मिलजुल के, बात करो हँस खिल के।'

8. इसके साथ-साथ समभाव नज़रों में कर दृष्टि की कंचनता भी बनाए रखो यानि प्रदत्त सेवा करते हुए हर किसी के हृदय में आत्मप्रकाश को देखो व उसी पर ठहरे रहो। ऐसा करने से हृदय खिड़ेगा, मुख चमकेगा व बदन प्रफुल्लित होगा। नतीजा--अन्दरुनी वृत्ति के साथ-साथ बैहरुनी वृत्ति में भी जो सेवा आप कर रहे हो, (स्वार्थ या परमार्थ की) उसकी कंचनता बरकरार रहेगी और वृत्ति-स्मृति, बुद्धि व भाव-स्वभाव रूपी बाणा निर्मल हो जाएगा। इस संदर्भ में सजनों सच्चेपातशाह जी कहते हैं:-

हाथ से काम-काज करना है और अन्दर अक्षर घड़ी की टक-टक की तरह एकरसता से चलता रहे। ध्यान महाराज जी के साथ जुड़ा रहे अर्थात कार्य-

व्यवहार करते हुए ख़्याल शब्द वल व ध्यान महाराज जी वल जुड़ा रहे।

साथ ही वह कहते हैं

बाल-वृद्ध, अमीर-गरीब, जनचर-बनचर, जड़-चेतन सब में एक ही नज़र आवे। इसके लिये अन्दर की वृत्ति दर्शन में और बाहर की वृत्ति राम-रूप, कृष्ण-रूप जिसका जो भी इष्ट है, उसी रूप में सबको देखे। इससे अन्दर की वृत्ति भी दमन हो जायेगी और बाहर की भी जीती जायेगी। यह समदृष्टि का छोटा सा रास्ता है।

9. सबसे समानता का व्यवहार करना है। इस संदर्भ में सच्चेपातशाह जी कहते हैं कि बिन वसीलों को कुछ भी देने यानि सफेदपोशों की सेवा करते समय किसी को कम व किसी को ज्यादा नहीं देना अर्थात् मुँह मुलाजा नहीं करना। इस तरह आपके सेवा भाव से समभाव झलकना चाहिए और मन-वचन-कर्म से सजनता का व्यवहार होना चाहिए क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

'सम दा करो वर्त्ताव-आप पकाओ ते पकवाओ।
किन्हां सजना नूं एहो दिखाओ सजनों वे प्रभाव।'

इस तरह सजनों:-

'एक चाल पकड़ो सजनों, एक करो वर्त्ताव।'

10. सेवा कर्त्ता भाव यानि अहंकार व 'हौं-मैं' के भाव से रहित होकर करनी है। यहाँ तक कि यह भी ख़्याल में न आवे कि 'मैं' भी कोई चीज हूँ। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि कर्त्तापन से की गई सेवा की लाभ-हानि सुख-दुःख के रूप में खुद को ही भोगनी पड़ती है। ऐसा न हो इसलिए सजनों सच्चेपातशाह जी ने कहा:-

'जो नाम हो उसी का ध्यान' और 'जहाँ ख़्याल वहीं दृष्टि'।

इस सूक्ष्मता को पकड़ने से 'हौं-मैं' का रोग मिट जायेगा और सेवा-भाव ताकतवर हो जायेगा।

11. सेवा के दौरान हुक्म की पालना करनी है। वाद-विवाद, तर्क-वितर्क-कुतर्क आदि नहीं करना। जैसा कि कहा भी गया हैः-

'वाद-विवाद किसे नाल न कीजे, जिह्वा राम नाम रस पीजे।'

इसके स्थान पर

कदम-कदम पर विचार पकड़ना है और सदैव विचार शब्द के महामन्त्र पर अडिग खड़े रहना है, यानि जो बोलो, पहले उसे तोलो और इसके लियेः-

कदम-कदम ते विचार, विचार नाल होवे सजनों प्यार'।

12. सेवा चाहे किसी प्रकार की मिले, जोड़े रखने से लेकर स्टेज पर बैठने तक, उसको अत्यन्त ही प्रेमपूर्वक, श्रद्धा व विश्वास से सम्पन्न करना है। ऐसी सेवा ही शारीरिक व मानसिक तन्दुरुस्ती का वर्द्धन करने वाली होती है।

13. सेवा के प्रति पूर्ण ज्ञान और युक्ति की ढंग से जानकारी होना अति आवश्यक है ताकि आत्म-निर्भरता बनी रहे और किसी अन्य के सहारे की या मार्ग-दर्शन की आवश्यकता न रहे और दूसरों को भी हमारी कमी या लापरवाही का नतीजा हानि के रूप में न भुगतना पड़े। याद रखो दूसरों को पहुँचाई वह हानि बाद में बुरे नतीजे के रूप में स्वयं को ही सहन करनी पड़ती है, अतः इसके प्रति सावधान रहना है।

14. सदैव अपने ख़्याल को बुरी बातों व विषय-विकारों के कुसंग जैसे ईर्ष्या-द्वेष, निन्दा-चुगली, तेरी-मेरी, लड़ाई-झगड़ा, वैर-विरोध आदि से बचा के रखना है। चूंकि इस प्रकार से की गई सेवा सर्वथा निष्फल होती है इसलिए सच्चेपातशाह जी कहते हैंः-

‘जगह न देवो उस बात नूं जेहड़ा बात सुनावे।
हृदय विच फिर ओ बात न कल्पावे,
सहेलियों में बैठ के न ओ चुगली लावे‘ ।

अर्थात् सुनी हुई अविचारी बात से अन्दर कल्पना उत्पन्न होती है, जिससे सजन एक दूसरे की निन्दा-चुगली का व्यवहार अपना लेता है। ऐसा न हो इसीलिये आगे कहा गया हैः-

सजनों इक बात इक कन सुणे, दूजे कन्नो निकले।

यानि कोई भी ऐसी सुनी हुई अविचार युक्त बात को हृदय में न धारण करो यानि ठहरने की जगह न दो अपितु एक कान से सुनो और दूसरे कान से बाहर निकाल दो। इसके अतिरिक्तः-

‘पिछली जो गुज़री जो बीती विहाणी,
ख़्याल विच न बात ओ लियाओ।‘

सजनों फिर सच्चेपातशाह जी घर-परिवार वालों की सेवा करते समय सावधान करते हुए कहते हैं किः-

‘गृहस्थ आश्रम में रैहंदिया होयां घर वाले, परिवार वाले, कुल संसार वाले कोई ऐसी वैसी बात कहें तो सोचो-तोलो कोई अन्दर सट तो नहीं लगी (यानि आपका मानसिक सन्तुलन डोल तो नहीं गया)। आप नूं देखो कि अंग-अंग मेरा सबूत है। (यानि हाथ-पैर सब तो ठीक-ठाक साथ लगे हुए हैं)। फिर हृदय में महाराज दे अग्गों प्रार्थना करो कि महाराज जी इन्हां नूं वी सुमति बख़्शो, ए सजन वी मन्दी खरीद न करें।‘

इस तरह शान्ति शक्ति के हथियार द्वारा अपनी ताकत का इस्तेमाल करते हुए उस ईश्वर के सब सुपुर्द कर, कटु बात कहने वाले पर भी फतह पा लो और उसके लिये भी मंगल कामना करो।

15. इसी तरह सेवा के दौरान किसी प्रकार की कोई अनीति भी नहीं करनी क्योंकि सेवा में अनीति अत्यन्त कष्टदायक है जिसका परिणाम सजन को असहनीय पीड़ा व दुःख के रूप में भुगतना पड़ता है। ऐसा न हो इसीलिये सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा हैः-

नीतियाँ पकड़ो मेरे सजनों, नीतियाँ विरुद्ध न चलो इन्सान।

सेवा के ही संदर्भ में सजनों याद रखो कि जहाँ तन व मन की सेवा का महत्त्व है वहीं धन का महत्त्व भी अत्याधिक है क्योंकि मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण धन-व्यवस्था से भी जुड़ा हुआ है जिसका प्रभाव खुद पर, परिवार पर और कुल संसार पर भी पड़ता है। इस विषय में हर सजन का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह हैसियत अनुसार अपने परिवारजनों की अथवा समाज की, धन से भी उचित सेवा करे। इस प्रकार का सेवा-भाव भी युगों से चलता आ रहा है क्योंकि ऐसा करने से सजन की धन के प्रति आसक्ति नहीं बनती और वह मायाजाल से बचा रह सकता है। यह सेवा भी निष्काम भाव से होनी चाहिये।

स्पष्ट है सजनों प्राणी द्वारा की हुई हर प्रकार की सेवा का लक्ष्य निष्कामता ही होना चाहिए और उसे अकर्त्ता भाव से ही सम्पन्न करना चाहिए ताकि लोक-परलोक में यश और कीर्ति फैले। इस संदर्भ में सच्चेपातशाह जी के इन शब्दों को भी याद रखना है 'फ़र्ज अदा को सच्चाई धर्म से निभाना है' क्योंकि यह भी एक सेवा है। इस प्रकार की सेवा से असीम सुख व चिरस्थायी शान्ति की अनुभूति होती है।

अंत में सजनों जान लो कि विश्व परमात्मा की स्वयंभू मूर्ति है जो सदा, सर्वदा, सर्वत्र प्रत्यक्ष विद्यमान है। यह विश्वास जब प्राणी के अन्दर जाग्रत होता है तो वह समस्त आडम्बरों, कर्मकांडों व अविचारों से मुक्त होकर विश्वमूर्ति का यानि परमेश्वर का ऐश्वर्य सर्वत्र देखते हुए कृतार्थता व प्रसन्नता का अनुभव करता है और उसकी स्मृति में 'मैं सेवक सचराचर रूपराशि भगवत' का भाव जाग्रत हो जाता है। इस तरह उसे लगने लगता है कि विश्वरूप परमात्मा चराचर सृष्टि के रूप में दिन-रात हमारी सेवा में है यानि

वह अनन्त हाथों से हमें दे रहा है, अनंत नेत्रों से हमें देख रहा है, हमारे सब व्यवहार उसी के साथ हो रहे हैं क्योंकि सब में वही रम रहा है। यह धारणा स्थिर होते ही उसके अन्दर विश्व के प्रति कृतज्ञता का भाव वृद्धिगत होता है जो निःस्पृह, निष्कपट प्रेम एवं सेवा भाव के रूप में उसमें दिखने लगता है। इस अवस्था में वह विश्व को अपने आप से अलग नहीं समझता इसलिए उस से एक क्षण के लिए भी विभक्त नहीं रह सकता और उसका अनन्य सेवक बन लोकहितकारी बन जाता है। ऐसा होने पर कुल धर्म, जाति धर्म, जात-पात, अभिमान आदि विकारों का लय हो जाता है और अखंड आनन्द की अनुभूति होती है। इस अनुभूति का अनुभव करते हुए तद्नुकूल आचरण करना ही सेवा का लक्ष्य है। इसी लक्ष्य को आपने, हमने, सबने पाना है और अपना जीवन सफल बनाना है। इसी संदर्भ में ही तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

नहीं चाहीदा ए फल फुल मेवा। इक चाहीदी ए चरणां दी सेवा।
नहीं चाहीदा ए फल फुल मेवा। इक चाहीदी ए चरणां दी सेवा।

सजनों ऐसा सुनिश्चित करने के लिए निष्काम सेवा के निमित्त 'चरण शरण सजन श्री शहनशाह हनुमान जी दी वन्दना करां बारम्बार दास सीस धरे चरणां उत्ते सजन त्रिभुवनपति रघुनाथ' इस के भावार्थ को समझो और तद्नुरूप सर्व कल्याणकारी सेवा भाव अपनाकर निष्काम पद को प्राप्त कर लो। जानो ऐसा पुरुषार्थ दिखाने पर ही ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर भरपूर हो सकोगे और आत्मतृप्त हो ब्रह्मज्ञानी नाम कहाओगे जैसा कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा भी गया हैः-

पहले निष्कामी वल ब्रह्मज्ञानी, जद फ़कीरपना हटाओगे।
त्याग दी कुर्सी ते इस्थर होके, जोत नाल मेल तुसां खाओगे।।

सबकी जानकारी हेतु यह कार्य कैसे सिद्ध करना है, इस हेतु हम आगामी सप्ताह बात करेंगे।

दिनाँक 21 अक्तूबर 2018 का सबक़

सेवा-3

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,

उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत सप्ताहों में सजनों सेवा के विषय में हमने जाना कि मनुष्य को यह शरीर निजी सुख भोगों के लिए नहीं मिला अपितु निष्काम सेवा द्वारा दूसरों को सुख पहुँचाने के निमित्त मिला है। इसी निःस्वार्थ भाव से की गई सेवा से मानव की व्यक्तिगत सुखेच्छाएँ यानि रागात्मक प्रवृत्तियाँ मिटती जाती हैं और संसार में रहते हुए भी उनसे उसका सम्बन्धविच्छेदन बना रहता है। इस तरह कर्त्ता होते हुए भी मानव अकर्त्ता भाव में स्थित रहता है और सेवा द्वारा हर क्षण सर्वपूर्ण नित्य परमात्मा के साथ अभिन्नता का अनुभव कर प्रसन्नचित्त बना रह पाता है अन्यथा तो वह रोते-झुखते हुए जीवन व्यतीत करता है।

इसके अतिरिक्त हमने यह भी जाना कि संसार का सम्बन्ध ऋण से बँधा हुआ है। इस ऋण से मुक्त होने का एक ही उपाय है, वह है समस्त कामनाओं/इच्छाओं/सांसारिक वासनाओं व फलेच्छा से रहित होकर यानि किसी से कुछ न चाहते हुए, निष्काम भाव से प्राणी मात्र की सेवा करना। इस संदर्भ में जानो कि हर प्रकार की कामना, आसक्ति या इच्छा से शून्य मन की यह निष्काम स्थिति संकल्प रहित अवस्था कहलाती है जिसके अंतर्गत मन-

चित्त समस्त सांसारिक बन्धनों, आकांक्षाओं व वासनाओं से रहित हो शुद्ध व मुक्त हो जाता है। सतयुग में प्रत्येक इंसान की यही अवस्था होती है। इसलिए तब सेवक-स्वामी, भक्त-भगवान व गुरु-चेले का द्वैत युक्त भक्ति-भाव नहीं होता और वे निःस्वार्थी व संतुष्ट इन्सान कर्मफल द्वन्द्व की आसक्ति से मुक्त हो, जन्म-मरण, रोग-सोग, ख़ुशी-ग़मी, मान-अपमान, अमीरी-गरीबी, संयोग-वियोग, सुख-दुःख आदि से ऊपर उठ जाते हैं और ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के अधिकारी सिद्ध हो, बिना यत्न के मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। इसी तथ्य के दृष्टिगत सजनों कुदरती ग्रन्थ के अध्याय में कहा गया है:-

संसार के सब कामों में लीन होते हुए भी जो निष्कामी है वही ब्रह्म है।

स्पष्ट है सजनों कि वास्तव में जीवन की सफलता और सार्थकता निष्काम सेवा में ही निहित है क्योंकि इसी के द्वारा व्यक्ति कर्मफल की इच्छा का पूरी तरह से त्याग कर, सिद्धि-असिद्धि में समान भाव रखते हुए, निर्लिप्तता से सर्वहित की खातिर शुभ कर्म करने में प्रवृत्त हो पाता है। परिणामतः हृदय में छाया अज्ञान अंधकार छँट जाता है, आत्मस्वरूप की प्रतीति होती है और व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास होना आरम्भ हो जाता है। इस तरह सर्व को आत्मवत् जानते हुए प्राणी, आत्मज्ञान के साथ-साथ पूर्ण आत्मसंतोष प्राप्त कर लेता है और अपने जीवन के परम लक्ष्य यथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि कर, जीवन मुक्त हो परमानन्द को प्राप्त हो जाता है। यही परम आनंद तेज बनकर उसके मुखमंडल को दिव्य आभा प्रदान करता है जिससे उसके चेहरे पर मुस्कराहट आती है, बदन प्रफुल्लित होता है, हृदय खिड़ता है और मुख चमकता है। इस प्रकार निष्काम सेवा की राह पर चलकर व्यक्ति निजी ईश्वरीय स्वरूप को सहज ही पा लेता है यानि 'ईश्वर है अपना आप प्रकाश' का सहज ही बोध कर उस पर खड़ा हो जाता है और संसारी व परमार्थी दोनों राज्य प्राप्त कर लेता है। निष्काम सेवा की इसी महत्ता के दृष्टिगत सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अध्याय में कहा गया है:-

आप कर्म करने वाले सच्चे योगी बनें, निष्काम कर्म करें और अपने ज्ञान की अग्नि में अज्ञानता का नाश करें क्योंकि

जीवन उसी का सुखी है जो
मन-वचन-कर्म द्वारा सब कामों को सच्चाई और निष्काम भावना से करता है,
वरना मनुष्य का तन मन सदा व्याकुल रहता है।

उपरोक्त वाक्यांश से सजनों यह ज्ञात होता है कि निष्कामी सेवक ही लोक-परलोक में यशस्वी होता है, जबकि कामी की कीर्ति, सुख और शांति सब नष्ट हो जाती हैं क्योंकि फलेच्छा इन्सान के अन्दर लोभ-लालसा व आशा-तृष्णा जाग्रत कर उसे स्वार्थी व विषयों का भोगी बना जन्म-मरण के चक्रव्यूह में फँसने का अधिकारी बनाती है और मानसिक सुख शांति का हरण कर लेती है। ऐसा स्वार्थी फिर यथार्थ को देख-समझ नहीं पाता और स्वार्थ पूर्ति हेतु मानवता के विपरीत कुछ भी अनुचित कर्म करता जाता है। इस तरह कर्म करता हुआ वह धीरे-धीरे कर्मफल की प्राप्ति के प्रति अत्यधिक लालायित हो जाता है और यह सत्य भूल जाता है कि फल प्राप्ति अनिश्चित होती है और उसकी केवल सम्भावना मात्र ही की जा सकती है। अब केवल सम्भावना मात्र को भ्रमवश निश्चय मान लेना कर्त्ता की भूल होती है। निष्काम भाव से सेवा करने का सिद्धान्त मनुष्य को इसी भूल से बचाने के लिए प्रतिपादित किया गया है। इस संदर्भ में मनुष्य के लिए कर्म के अभीष्ट फल की विफलता को भी ध्यान में रखना अनिवार्य है। आशय यह है कि उसके लिए कर्मफल के प्रति अत्यधिक आग्रहवान होकर अनुचित साधनों जैसे छल-कपट, झूठ, चोरी आदि के प्रयोग की ओर आकृष्ट न होना भी अनिवार्य है अन्यथा वह उन साधनों में लिप्त हो कुकर्म-अधर्म, दुराचार कर सकता है अथवा विफल होने पर कर्म से पलायन भी कर सकता है। निष्काम सेवा की अवधारणा इन सब अवांछित स्थितियों का परिहार करती है, इसलिए निष्काम भाव से सेवा करने को महत्ता दी जाती है और कहा जाता है:-

चहुं प्रकारां दे मनुष्य बनाए, व्यभिचारी विषयां विच गंवाये।
अभिमानी अपनी पूजा करावे, अहंकारी अग्गों रुकावटां पावे।
निष्कामी तेरा भक्त कहावे, सब विच वसनैं तुहीं तुहीं।।

स्पष्ट है सजनों निष्काम सेवा का परित्याग सुख-आनंद का परित्याग है,

जीवन का परित्याग है। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के पास होते हुए भी व सब जानते-समझते हुए भी हमारे साथ ऐसा न हो इसके लिए हमें निष्काम भाव से सेवा करने की महत्ता को अच्छी तरह से समझ कर स्मृति में बिठाना होगा और तदुपरान्त अहंकार रहित होकर निष्कामता से इस जगत की सेवा करने में जुट जाना होगा। इस संदर्भ में सजनों हम भी सब हालातों में अपने हृदय, दिमाग और शरीर को ठीक रखते हुए व निष्काम भाव से इस जगत की सेवा करते हुए अपने परमात्म स्वरूप में स्थिर बने रह, ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के अधिकारी बने इस हेतु आओ अब इसी बात को सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित कीर्तन 'श्याम सिलौना अंतर्यामी पहुँचे दरबार' के माध्यम से समझते हैं:-

(श्री हनुमान जी के मुख के शब्द)

श्याम सिलौना अन्तर्यामी पहुंचे दरबार।
कुर्सी ऊपर बैठ गये, बैठे सच्ची सरकार।

(श्री रामचन्द्र जी कह रहे हैं)

पहले निष्कामी वल ब्रह्मज्ञानी, जद फ़कीरपना हटाओगे।
त्याग दी कुर्सी ते इस्थर होके, जोत नाल मेल तुसां खाओगे।
जोत नाल मेल तुसां खाओगे।।
संस्था हेठां ख़ामोश बैठी, नामोश बैठी ख़ामोश बैठी।
पकड़ियां चालां उलट पुलट, इस तरह ओ सोचां विच बैठी।।
पिछलियां गलत फ़हमियां दूर करन, हुण माफ़ इन्हां नूं करदा हां।
मैं हूँ साजन अन्तर्यामी, इक इक बात इन्हां दी फड़दा हां।।
जद पता है संस्था नूं के मैं, घट घट दे विच वसदा हां।
फिर उलटी बात किस तरह चलो, जे मैं घट घट दे विच वसदा नहीं।
उलटी बात चल सकदी नहीं उलटी बात चल सकदी नहीं।।

(संस्था बोल रही है)

अन्तर्यामी दिलां दियां जानन वाले, मैं हूं कुटिल कठोर कामी।
इक बात मनो सुलतान शाहवां दे शाह, मेरी वी करो निगाहबानी।।

(श्री रामचन्द्र जी कह रहे हैं)

दिन रात मैं तुहाडियां सुनदा हां, चाहे लुक के करो चाहे छिप के करो।
हर समय दी किवें न सुना तुहाडी बात, अन्तर्यामी घट घट में हूं।
फिर किस तरह न करां इन्साफ, अन्तर्यामी घट घट में हूं।।
निर्वाण दे अन्दर साजन मेरे दी जोत है सर्व सबाई।
शेषां ते ओ साजन मेरा, लक्ष्मी दे संग मौज उड़ाई।।
लक्ष्मी दे संग मौज उड़ाई, लक्ष्मी दे संग मौज उड़ाई।।
विश्रामी पलंग ते साजन मेरा, हनुमान श्री राम जी नूं बात सुनाई।
हकूमत दी कुर्सी ते इस्थर हो, कैसी है आप दी रौशनाई।
कैसी है आप दी रौशनाई, कैसी है आप दी रौशनाई।
हकूमत दी कुर्सी ते इस्थर हो, कैसी है आप दी रौशनाई।।

(श्री रामचन्द्र जी कह रहे हैं)

शब्दः- हर बात वल्लों साजन जी असां तुहानूं समझा ही दिया।
तुसां न करदे होय परवाह उसनू सिरे चढ़ा ही लिया।।
जेहड़ा जेहड़ा पाप किया उन सजनों ने
ओ केहड़ा केहड़ा पाप बताऊं साजन जी।
गल्तियां पाप किया ओ क्या क्या खोल सुनाऊं साजन जी।।

कीर्तन का भावार्थ

इस कीर्तन के अंतर्गत सजनों सजन श्री शहनशाह हनुमान जी संस्था को सावधान करते हुए कहते हैं कि अंतर्यामी यानि सबके दिलों की जानने वाले श्याम सिलौने परमेश्वर दरबार में पहुँच चुके हैं और वह कुल दुनियां के

मालिक, सच्ची सरकार, संस्था को, ब्रह्मज्ञानी बनने के प्रति उनकी कमजोरियों के बारे में जाग्रत कर रहे हैं और साथ ही कैसे वह अपने विकृत स्वभावों पर काबू पा व सत्य धर्म के निष्काम भक्ति भाव अपना, ब्रह्मज्ञानी बन जोत से मेल खा सकते हैं, इसके बारे में भी चर्चा कर रहे हैं। अतः उनकी यह बात सुनने के लिए सारे ध्यानपूर्वक तत्पर हो जाओ।

ध्यान से सुनो, संस्था को सम्बोधित करते हुए श्री रामचन्द्र जी कह रहे हैं कि सजनों ! अगर आप ब्रह्मज्ञानी अर्थात् पारमार्थिक सत्ता का ज्ञान प्राप्त कर शुद्ध ब्रह्म भाव अपनाना चाहते हो तो सर्वप्रथम आपको अपना मन हर प्रकार की कामना, आसक्ति या इच्छा से मुक्त रखते हुए, जीवन का हर कर्त्तव्य धर्मसंगत प्रसन्नतापूर्वक निभाने के स्वभाव में ढल निष्कामी बनना होगा। जानो ऐसा सुनिश्चित करने पर ही आपका चित्त शुद्ध अवस्था को प्राप्त रहेगा और आप इस पुरुषार्थ द्वारा मुक्ति प्राप्त करने के अधिकारी बन, परमार्थी धन प्राप्त कर पाओगे और इस तरह आत्मिक निर्धनता हटा पाओगे। इस बात को स्पष्ट करते हुए वह आगे कहते हैं कि इस शुभ कार्य की सिद्धि हेतु, निजी लाभ यानि अपने स्वार्थ या हित का त्याग करने वाला समर्थ, त्यागवान इंसान बनना होगा। तभी आप जोत से मेल खा, प्रकाशमय हो जाओगे और परमात्मा नाम कहाओगे।

परमेश्वर की यह बात सुनने पर नीचे बैठी हुई संस्था खामोश व नामोश हो गई अर्थात् चुप्पी साधते हुए व शर्मिन्दगी का एहसास करते हुए, मन ही मन अपनी गलतियाँ स्वीकारते हुए सोचने लगी कि क्यों कर हमने आत्मीयता युक्त इलाही स्वभाव छोड़कर, उलट-पुलट यानि बनावटी आचरण अपनाया और विधि के विधान के विपरीत ढंग से इस जगत में विचरने की महान भूल की? इस प्रकार संस्था के मन में पश्चाताप का भाव देखते हुए परमेश्वर कहने लगे कि अगर यह सब बीती हुई पिछली गलतफहमियों यानि भ्रममूलक असत्य वार्ता का त्यागने का संकल्प लें तो मैं तत्क्षण इनकी पिछली भूलों को माफ करता हूँ। ऐसी उदारता दिखाने के पश्चात् वह संस्था को सुचेत करते हुए, ईश्वर की सर्वज्ञता से परिचित कराते हुए कहने लगे कि

जानो, मैं साजन अंतर्यामी हूँ और मैं आपके अन्दर चलने वाली व परस्पर होने वाली, एक-एक बात को पकड़ने की सामर्थ्य रखता हूँ। जब आप इस सत्य से भली-भांति परिचित हो कि हर घट में यानि हृदय में मेरा वास है तो क्यों कर यह उलटी बात मान कर कि मैं घट-घट में नहीं बसता, विपरीत चलन दर्शाते हो?

इसके प्रति संस्था को समझौता देते हुए परमेश्वर आगे कहने लगे कि याद रखो यह उलटा दोषपूर्ण प्रचलन अब कदापि नहीं चल सकता। परमेश्वर के यह वचन सुनकर संस्था उनकी बात स्वीकारते हुए बोल उठी कि हे परमेश्वर! हम तो कुटिल, कठोर, कामी हैं यानि कपटी, निर्दयी व कामुक हैं, अतः हे अंतर्यामी! सबके दिलों की जानने वाले, सुलतान शाहवां दे शाह, हम पर कृपादृष्टि रखते हुए, हमारी यह एक बात मान लो कि अब से हमारी निगाहबानी यानि देखरेख आप ही करो।

संस्था की यह बात सुनकर परमेश्वर बोल उठे कि चाहे लुक के करो, चाहे छिप के करो, आपके हृदय में व्याप्त मैं अंतर्यामी दिन-रात आपकी बातें सुनते हुए उसका साक्षी रहता हूँ। इसलिए विचार करो कि जब मैं अंतर्यामी घट-घट में अर्थात् सर्वव्यापी हूँ तो कैसे आपकी दिनचर्या यानि हर समय की बात मुझे सुनाई नहीं दे सकती यानि ज्ञात नहीं रह सकती? परमेश्वर फिर से संस्था को सवाल करते हुए कहते हैं कि जब मैं सबके दिलों की जानने वाला, घट-घट में वास करता हूँ तो कैसे न्यायसंगत निर्णय ले मैं आपको आपकी करनी अनुसार वैसा ही फल प्रदान न करूँ?

इस प्रकार संस्था को हर विभ्रम से आज़ाद करने के पश्चात् परमेश्वर उनकी निगाहबानी करने हेतु व उनका ख़्याल जगत की तरफ से मोड़, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, नेहकलंक अवतार, श्री साजन जी की ओर जोड़ने हेतु कहते हैं कि मुक्तिदाता श्री साजन जी की जो जोत निर्वाण के अन्दर जग रही है, उसी शांति की प्रतीक जोत के प्रकाश से ही सर्व-सर्व प्रकाशित है। इसी विषय में आगे बताते हुए कहते हैं कि आद्-अंत प्रकाशित मेरे श्री साजन ही शेष पर विराजमान हो, लक्ष्मी यानि धन की अधिष्ठात्री देवी के संग आनन्द

से क्रीड़ा कर रहे हैं। यह बात सुन सजन श्री शहनशाह हनुमान जी, श्री रामचन्द्र जी को सम्बोधित करते हुए कहने लगे कि देखो विश्रामी पलंग पर श्री साजन जी सुशोभित हैं और त्रिलोकी की हुकूमत की कुर्सी पर इस्थर हो, किस तरह अपने बिन सूरजों प्रकाश से इस मायावी जगत को विराट् दर्शन के रूप में प्रकाशित कर रहे हैं।

अंत में श्री रामचन्द्र जी, श्री साजन जी को कहते हैं कि संस्था की हर बात से परिचित करा हमने आपको उनके विषय में सब समझा दिया है। आगे वह कहते हैं कि इन सजनों ने और जो-जो पाप कमाया है व गलतियाँ की हैं उसके विषय में हम आपको क्या-क्या बताएँ या खोल सुनाएँ, वह तो सब कहने सुनने से बाहर है। अतः ऐसे पापियों की गलतियों की अनदेखी नहीं करो और समय रहते ही उन्हें सावधान करते हुए उचित सुधार का यत्न करो वरना ऐसे सजन सिर चढ़ जाते हैं और विघ्नकारी साबित होते हैं।

सजनों इस कीर्तन व इसके भावार्थ को सुनने के उपरांत यह समझ में आता है कि निष्काम सेवा भाव व ब्रह्मज्ञान के अभाव के कारण ही जीव सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान व सर्वज्ञ ईश्वर की विद्यमानता के सत्य को भूल संशय-भ्रमों का शिकार हो जाता है और आत्मिक स्वभाव के विपरीत, शारीरिक स्वभाव अपना कर व उलट-पुलट चालें पकड़ कर अपनी निगाहबानी आप करने के योग्य नहीं रहता। सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के द्वारे पर होते हुए हमारे साथ ऐसा न हो इसलिए सत्य-धर्म का निष्काम भक्ति भाव अपना कर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करो व इस तरह अपना परमार्थ सँवारो। इसी में सजनों अपना व सबका कल्याण समझो।

सबकी जानकारी हेतु सेवा के विषय में, इससे आगे आगामी सप्ताह जानेंगे।

दिनाँक 28 अक्तूबर 2018 का सबक़

सेवा-4

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,
उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत सप्ताह सजनों हमने जाना कि जीव स्वभाव वश कर्म अभिमानी है। इस कर्म अभिमान से वासना प्रकट होती है और वासना के वशीभूत हुआ इन्सान फिर कर्म करता है। इस दुष्चक्रव्यूह में फँसा इन्सान संसारी पदार्थों के प्राप्त होने पर भी और न प्राप्त होने पर भी संतुष्टि व शान्ति प्राप्त नहीं कर पाता। इससे छूट कर आत्मतुष्टि व अखंड शान्ति प्राप्त करने के लिए उसके पास एक ही साधन होता है और वह होता है दृढ़ता से परमतत्व की परायणता यानि प्रभु परायण होकर तमाम कर्मों के सुख-दुःख रूपी फलों को सम कर जान, उसके हुक्म यानि आज्ञा पर छोड़ कर अकर्त्ता व निष्काम भाव से हितकारी कर्म करने में प्रवृत्त हो जाए। यही मानसिक संतुलन एक अवस्था में रखते हुए प्रसन्नचित्तता से जीवन जीने का असली तरीका है। निःसंदेह इस प्रकार निष्काम भाव से प्रभु परायण होकर सेवा करने से मानव के अन्तःकरण के दोषों का व दुष्ट वासनाओं का अन्त हो जाता है और उसके हृदय में निर्मल भाव-भावनाएँ पनपती हैं। इन निर्मल भावनाओं के प्रभाव से उसकी

वृत्ति, स्मृति व बुद्धि निर्मल और निश्चल हो जाती है जिसके फलस्वरूप उस व्यक्ति विशेष के लिए अपने जीवन का प्रयोजन सिद्ध करने के प्रति यत्नशील रहते हुए, निज शाश्वत धर्म पर यथा बने रह दुःख-सुख सम कर जानना सहज ही संभव हो जाता है। इस प्रकार आत्म स्वरूप में स्थिति से उसे निज के सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान व सर्वज्ञ होने का सत्य बोध हो जाता है जिससे जगत में सब कुछ करते हुए भी उसके लिए कर्त्तापन के अभिमान से मुक्त हो बिना किसी कठिनाई के जीवन के परम लक्ष्य यानि मोक्ष को पा, अचल शान्ति प्राप्त करना सहज हो जाता है। निष्काम सेवा की इसी महत्ता को जानते-समझते हुए ही सब धर्म ग्रन्थों ने इसे मानव जीवन का निष्कंटक रास्ता माना है व कल्याण का सर्वश्रेष्ठ साधन कहा है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी कहा गया हैः-

निष्काम रस्ते ते आना रे दर्शन हमारा पाना रे,
निष्काम रस्ता है बड़ा सुखाला, फकीरपना हटाना रे
हाँ दर्शन हमारा पाना रे।।

इस सन्दर्भ में विडम्बना तो सजनों यह है कि यह सब जानने-समझने के पश्चात् भी हम वासनायुक्त हो स्वार्थपर कर्म करने में प्रवृत्त हो जाते हैं इसलिए संतोष, धैर्य, सत्य, धर्म पर स्थिर बने रहने के स्थान पर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार अपना बैठते हैं और जीवन का खेल बिगाड़ बैठते हैं। यद्यपि हमारा दिल करता है कि हम हिम्मत करें और इससे उबरने का यत्न करें तथापि संसार के झटके खा-खा हमारा प्रयत्न फिर-फिर अवनत हो जाता है और हम बुरे इंसान बन बैठते हैं। इस सन्दर्भ में सजनों मत भूलो कि नीचे गिरना जितना आसान है, ऊपर चढ़ना उतना ही कठिन है। अतः हिम्मत से काम लो और सतत् प्रयत्न द्वारा ऊपर चढ़ने का अदम्य पुरुषार्थ दिखाने से मत घबराओ। आशय यह है कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित युक्ति अपना कर संतोष, धैर्य, सच्चाई, धर्म के चार सवाल हल कर सम पर खड़े हो जाओ। इस तरह निष्काम सेवा भाव अपनाने के प्रति दृढ़

संकल्प हो जाओ और कामनारहित हो जाओ। इससे बुद्धि चलायमान नहीं होगी और आपके लिए मानव धर्म पर बने रहना सहज हो जाएगा। फलतः जीवन बनाने का कार्य सहजता से सिद्ध हो जाएगा। आप सब ऐसा करने में कामयाब हो सको इस हेतु सजनों अब जानो कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में परमेश्वर कैसे 'गरुड़ ते चढ़न भगवान, अग्गों साजन सज रिहा महान' इस कीर्तन के माध्यम से आपको निष्काम रास्ता अपना कर ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने का व भक्ति की तमाम अवस्थाएँ पार कर अपने सच्चे घर पहुँचने का आवाहन दे रहे हैंः-

(सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के मुख के शब्द)

गरुड़ ते चढ़न भगवान, अग्गों साजन सज रिहा महान हां हां हां हां।
शक्ति लक्ष्मी ही सजे, हनुमान शहनशाह जी देख के हर्षे।
लक्ष्मी गरुड़ ते बैठ के चंवर झुलावे ते देखो सजनों ऊपर फुल वर्षे।।

(श्री साजन जी कह रहे हैं)

शहनशाह महाबीर जी ने असां रुड़दे हुए जीवां नूं हां-हां-हां-हां।
पकड़ के ते सजनां नूं कन्धी दे नाल लगाये ओ दाता।।
कईयां जन्मां दे भुले होए जीवां नूं।
सोहणे वचन दे के रहे समझा ओ दाता।।
बुद्धि डिग्गी सी सजनां दी मनुराज अन्दर हां-हां-हां-हां।
चरण दिखा के विश्राम पवाये ओ दाता।
मेहरबान हो के ते सारे सजनां ते,
बख़्शनहार बक्षंद कहावे ओ दाता।।
निंदया झूठ वल्लों सजनां नूं
अपने आपनूं पकड़ना सिखा के ते हां-हां-हां-हां।
खालस सोना ओन्हां नूं चमकाये ओ दाता।
खोट न राहवे इस बदन में,

शहनशाह हनुमान जी एहो समझाये ओ दाता।।
सच्चाई धर्म दे वचन समझा के ते हां-हां-हां-हां।।
निष्काम रस्ते ते विश्राम असां पाया ओ दाता।
निष्काम रस्ते ते ब्रह्म दा ज्ञान आवे,
महाराज दे दर्शन करवाये ओ दाता।।
अनुरागी अवस्था दिखा के ते हां-हां-हां-हां,
फिर त्यागी होना समझाये ओ दाता।
सन्यासी फ़र्ज अदा दा तरीका सिखा के ते,
उदासीनता दी चाल चलवाये ओ दाता।।
अनादि जोत जगे ओ जगमग हां-हां-हां-हां,
प्रमादि सर्व रौशनी फैलाये ओ दाता।
दाता अमर, अमर है जे नाम उस शहनशाह दा,
ते ओ रौशन नाम कहाये ओ दाता।।

आओ सजनों अब इस कीर्तन का भावार्थ समझें:-

कीर्तन का भावार्थ

इस कीर्तन के अंतर्गत सजनों सजन श्री शहनशाह हनुमान जी एक अलौकिक रचना का वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि गरुड़ पर श्री भगवान सवार हैं और उनके आगे श्री साजन महान सज रहे हैं। इनके अतिरिक्त शक्ति लक्ष्मी दोनों ही उनके संग सज रही हैं अर्थात् शोभायमान हैं। यह अद्‌भुत नज़ारा देखकर सजन श्री शहनशाह हनुमान जी हर्षाते हुए सभी सजनों को इस नज़ारे की सुन्दरता का बखान करते हुए कह रहे हैं कि देखो कैसे लक्ष्मी गरुड़ पर बैठकर अपने स्वामी पर चँवर झुला रही है और उधर ऊपर से फूलों की वर्षा हो रही है।

इस अवसर पर जब सभी दरबार में पहुँच गए तो श्री साजन जी सभी उपस्थित सजनों के समक्ष महाबीर जी की उपमा करते हुए कहने लगे कि

देखो आज के कलुषित समय काल में सब दीनों पर दया करने वाले, सजन श्री शहनशाह हनुमान जी, हम सभी पथभ्रष्ट जीवों को, अपना संग/सहारा प्रदान कर, अपनी त्रुटियाँ अर्थात् दोष व भूलें आदि ढूँढ निकालने का तरीका बता रहे हैं व कुरस्ते पर आगे बढ़ने से रोक, सद्प्रवृत्ति में ढाल रहे हैं। ए विध् वह आत्मविस्मृति के कारण, कई जन्मों से संसार के धोखे में आए हुए, अहंकारी जीवों को, रुचिकर सार्थक वाणी यानि वचन देकर, उनके हृदयों को ब्रह्म शब्द विचारों रूपी धन प्रदान करने की उदारता दिखा रहे हैं और उचित व्यावहारिक ज्ञान प्रदान कर उनके मन में समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार परस्पर सजन भाव अपनाने की बात अच्छी तरह ठहराने की चेष्टा कर रहे हैं।

इसी संदर्भ में वह उन महान दाता की बढ़ाई करते हुए आगे कहते हैं कि जिन सजनों की सोचने-समझने और निश्चय करने की शक्ति अर्थात् बुद्धि अस्थिर होकर यकायक ऊपर से नीचे मनुराज में जा गिरी है और वह अपने वास्तविक जीवन मूल्यों से अपरिचित हो चुके हैं उन मंद बुद्धि दुर्बल इंसानों को अपनी समीपता प्रदान कर, पुनः मनुष्यता में ढलने हेतु वह नाम अक्षर चलाने की युक्ति बता कर, विश्राम यानि अफुर अवस्था प्राप्त करने के प्रति प्रवृत्त कर रहे हैं। इस तरह वह दयालु सभी सजनों पर मेहरबान होकर अर्थात् उनकी बुरी दशा पर दया करते हुए उनकी भली-बुरी, खोटी-खरी बक्ष कर बक्षंद नाम कहा रहे हैं।

यही नहीं, महाबीर जी की परोपकारिता देखो वह तो निंदा के रूप में अन्यों के दोष दूसरों को बताने वाले यानि किसी की वास्तविक या कल्पित बुराई या बदनामी करने वाले निंदक व मिथ्यावादी सजनों को भी आत्मनिरीक्षण द्वारा, अपने आप को यानि निजी बुरे भाव-स्वभावों को पकड़ने की उचित युक्ति बता रहे हैं व इस तरह उनके हृदयों में सत्य व सजन भाव की स्थापना कर, उन्हें खालस सोने की तरह चमका रहे हैं ताकि उनके बदन में किसी किस्म का खोट अर्थात् दोष न रहे। इसी के साथ-साथ वह परमपिता सजन श्री

शहनशाह हनुमान जी उन्हें सच्चाई-धर्म के वचन समझा, निष्काम रास्ता अपनाने के योग्य बना रहे हैं ताकि इस पुरुषार्थ द्वारा उनके मन के अन्दर अशांति के स्थान पर शांति स्थापित हो और वह विश्राम को प्राप्त हों।

तत्पश्चात् सजनों श्री साजन जी भक्ति की विभिन्न अवस्थाओं से परिचित कराते हुए, उनकी प्राप्ति हेतु उचित परम पुरुषार्थ की युक्ति बताने वाले महान दाता की विशेषता बताते हुए कहते हैं कि हे मेरे सजनों ! निष्काम रास्ते पर सुदृढ़ता से बने रहने वाले अर्थात् हर कामना व आसक्ति से मुक्त रहने वाले निष्कामी जीव को स्वतः ही ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होता है। जब ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है तो वह दाता, निष्काम रास्ता धारण करने वाले ऐसे ब्रह्म ज्ञानी को उस ज्ञान के प्रयोग की उचित युक्ति समझा कर महाराजाधिराज अर्थात् परमेश्वर का दर्शन अर्थात् साक्षात्कार कराते हैं। फिर ईश्वर को पाने की प्रबल इच्छा उस अनुरागी के मन में उत्पन्न कर वह बल-बुद्धि के दाता सजन श्री शहनशाह हनुमान जी उसे अंतर्मुखी बना देते हैं यानि एकरस उसे अपने मन को सदा परमेश्वर में लीन रखने के योग्य बना देते हैं। ए विध् वह उसे सांसारिकता युक्त अधम भाव-स्वभाव त्याग कर, शुभ कार्यों में रत रहने की युक्ति समझाते हैं।

ऐसा होने पर उस इन्सान के अन्दर त्याग यानि परहित के निमित्त अपना सर्वस्व त्यागने की सामर्थ्य आ जाती है और वह सजन श्री शहनशाह महाबीर जी की कृपा से प्रभु के साथ मेल खा, सर्गुण में पहुँच जाता है। सजनों यह सब यहीं तक ही सीमित नहीं रहता। आगे महाबीर जी उसे समझाते हैं कि सिर मुँडाने से कोई सन्यासी नहीं होता अपितु सच्चा सन्यासी तो वह होता है जो अपना फ़र्ज़ अदा हँस कर करता है। इस प्रकार वह उसे एक सच्चे सन्यासी की तरह विरक्त होकर, सब कार्य निष्काम भाव से कैसे करने हैं, उसकी युक्ति बता, सर्व के प्रति अपना फर्ज-अदा हँस कर करने का तरीका सिखाते हैं और उसे उदासीनता अर्थात् निरपेक्षता से जीवन जीने की चाल यानि रीति-नीति पर चलने की कला सिखाते हैं। इस कला के अंतर्गत वह

उस सजन को समझाते हैं कि फर्ज़ अदा करने के बाद इस जगत की तरफ से तटस्थ होते जाना है यानि आगे पौत्र-परपौत्र तक नहीं जाना। उनका काम बच्चों को करने देना है, स्वयं नहीं करना। ऐसा करने से उदासीनता अपने आप आ जाएगी और निर्लेप हो जाओगे।

यह पूरा वृत्तांत बताने के पश्चात् श्री साजन जी उस जीव को इस सत्य से परिचित कराते हैं कि इस प्रकार जब सर्गुण के खेल खेलते हुए व फ़र्ज़ अदा हँसकर करते हुए अनादि जोत यानि जिसका कोई आद् अंत नहीं है उसे पहचान लोगे तो निर्वाण में पहुँच जाओगे। जोत के साथ जोत हो जाओगे और अनादि की पदवी प्राप्त कर लोगे। जब ऐसा हो गया तो अनादि जोत जगमग-जगमग जगेगी। ऐसा होने पर वह दाता प्रमादि यानि सर्व-सर्व रौशनी फैलानी आरम्भ कर देते हैं। इस तरह वह सजन सबकी जानने वाला हो जाता है। फिर वह कर्त्ता भी होता है और अकर्त्ता भी यानि रूप-रंग-रेखा से बाहर हो जाता है और परमधाम की मौजां मानता है। यह है सजनों उस महान दाता की युक्ति को प्रवान करने का कमाल। इसलिए तो अंत में सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की महिमा गाते हुए श्री साजन जी कहते हैं कि उस अमर दाता यानि शहनशाह का नाम अमर है और उनकी प्रसिद्धि यानि यश कीर्ति तीनों लोकों में रौशन यानि फैली हुई है।

सजनों इस कीर्तन व इसके भावार्थ को सुनने के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि बिगड़ी बनाने वाले, उलझन मिटाने वाले, रोते हुओं को हंसाने वाले, उजड़े हुओं को बसाने वाले और इंसानों की मति, बुद्धि और प्रेरणा को सावधान बनाने वाले विशेष बुद्धि वाले दाता, सजन श्री शहनशाह हनुमान जी सर्व महान हैं और उनके द्वारा प्रदत्त युवावस्था की भक्ति यानि समभाव-समदृष्टि की युक्ति कमाल है। उनकी युक्ति को प्रवान कर सत्य-धर्म के रास्ते पर चलने वाला सहज ही काम/कामना की गिरफ़्त से छूट निष्काम हो जाता है और आत्मबोध यानि सर्व एक दर्शन का अनुभव करते हुए दूसरों के सुख व हित की ख़ातिर अपने सुखों व हित का परित्याग करना सीख जाता है। इस

प्रकार जैसे-जैसे वह दूसरों के सुख की ख़ातिर निजी सुखों का त्याग करना सीख जाता है और निष्कामता से सर्व की सेवा करने में प्रवृत्त हो जाता है त्यों-त्यों तूं-मैं का सवाल मिटता जाता है और वह विचार, सत्-जबान, एक दृष्टि, एकता और एक अवस्था में खड़ा हो, आनन्द अवस्था को प्राप्त हो जाता है। सजनों जानो ऐसी स्थिति मन पर पूर्ण विजय के बाद ही बनती है। वास्तव में तो यह ही एक निष्काम मन की संकल्प-विकल्प रहित स्थिति होती है। अतः आध्यात्मिक प्रगति द्वारा आत्मज्ञान को आत्मसात् करो और ब्रह्मज्ञानी नाम कहलाने के योग्य बनो।

दिनाँक 4 नवम्बर 2018 का सबक़

आओ बढ़ें लौकिकता से अलौकिकता की ओर -1

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,

उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों जानो कि परमेश्वर ने इस मायावी जगत की रचना कुदरती कला द्वारा, अकर्त्ता भाव व निर्विकारता से की है। इस महान व अवर्णनीय संरचना में परमेश्वर का प्रतिबिंबित स्वरूप ही सर्वव्यापत है जिसका आधार यथार्थतया आत्मा में परमात्मा के रूप में वह आप ही हैं। जगत का मूल बीज होने के कारण उनका प्रधान गुण हर वस्तु की रचना अनुसार, समरूपेण सबमें विद्यमान रहता है और उसी का ही समयबद्ध उचित विकास होने पर जब वह वस्तु उस गुण को यथा ग्रहण कर अपने स्वभाव के अंतर्गत कर लेती है तो वह अमूल्य कहलाती है। इसी संदर्भ में सजनों जब कोई मानव अंतर्निहित अपने उस प्रधान गुण को ग्रहण व धारण कर यानि कुदरत जो ईश्वरीय शक्ति है उस की रमज को जान, व्यवहार में लाने का अदम्य पुरुषार्थ दिखाता है तो वह श्रेष्ठता को प्राप्त हो जाता है और बखूबी निष्काम भाव से परोपकार कमाता है।

यहाँ सजनों समभाव में स्थित रहने का महत्त्व समझ में आता है क्योंकि जब कोई इंसान समभाव को नजरों में कर, सजन भाव अपनाने में असमर्थ रहता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने अपनी मूल प्रकृति सम से च्युत हो प्रकृति के विकृत परिणाम जगत यानि संसार को अपना लिया है और इसी कारणवश वह विकार वृत्तियों के प्रभाव से एकरूपता के स्थान पर अनेकरूपता के भाव को आत्मसात् कर, यथार्थता अनुरूप जीवन जीने में असक्षम हो ताप-संताप से ग्रस्त हो गया है। इस निकृष्ट परिस्थिति से उबरने हेतु सजनों उसे पुनः समभाव-समदृष्टि का सबक़ आत्मसात् कर साम्य अवस्था में आने का पुरुषार्थ दिखाना होता है और अपने मूल स्वभाव यानि आत्मदर्शन में स्थित बने रहना होता है। यह अपने व सबके लिए उपयोगी व हितकारी बनने की बात होती है।

यहाँ याद रखने की बात यह है कि जहाँ प्रथम प्रकार की परम्परा अपनाना (एकरूपता के स्थान पर अनेकरूपता के भाव को आत्मसात् करने की यानि परमार्थ के स्थान पर स्वार्थ अपनाने की) विरूप परिणाम को प्राप्त करने की बात है वहाँ दूसरी प्रकार की परम्परा को अपनाना (अनेकरूपता के स्थान पर एकरूपता के भाव को आत्मसात् करना) स्वरूप परिणाम को प्राप्त होने की बात होती है। यही सबसे उत्तम अवस्था भी कहलाती है क्योंकि स्वरूप अवस्था में प्रकृति अव्यक्त रहती है। इसके विपरीत व्यक्त होने पर वह जगत कहलाती है। सजनों जानो कि इन्हीं दोनों परिणामों के अनुसार जगत बनता और बिगड़ता रहता है। इस तथ्य के अनुसार सजनों जब इंसान सत्य-धर्म के निष्काम रास्ते पर बने रह, अपने कर्त्तव्य अपनी मूल प्रकृति में स्थित रह धर्मसंगत निभाता है तो उस आत्मज्ञानी, गुणवान व शक्तिशाली परिपूर्ण इन्सान के मन से समस्त जगतीय भावों का नाश हो जाता है और उस चरित्रवान का ख़्याल, अपनी प्रकृति को अधिकार में रखते हुए अफुरता से परमेश्वर में लीन हो जाता है और विश्राम को पाता है।

उपरोक्त विवेचना से सजनों स्पष्ट होता है कि जहाँ प्रकृति व ब्रह्म अव्यक्त व

अगम-अगोचर है, वहीं जो उन द्वारा प्रकट किया या सामने लाया गया जगत है वह व्यक्त है। व्यक्त बड़ा होता है इसलिए साफ, स्पष्ट व समक्ष दिखाई देता है और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभव किया जा सकता है। अव्यक्त (परमात्मा) सूक्ष्म होता है इसलिए स्थूल दृष्टि से परलक्षित नहीं होता यानि उसका बोध केवल आत्मा अर्थात् आत्मिक ज्ञान, गुण व शक्ति द्वारा ही संभव हो पाता है। इस तरह अव्यक्त निराकार व नित्य होता है, व्यक्त आकारमय, नश्वर, परिवर्तनशील व स्थूल होता है। अव्यक्त परब्रह्म परमेश्वर कहलाता है, व्यक्त प्राणी जगत के नाम से जाना जाता है। इसलिए तो सजनों व्यक्त को अनित्य और अव्यक्त को नित्य माना जाता है।

इसी तथ्य को सजनों यदि दूसरी तरह से समझा जाए तो अव्यक्त के साथ जुड़ना समता में बने रह एकता, एक अवस्था में बने रहने की बात है तथा व्यक्त के साथ जुड़ना इन्द्रिय विषयों में उलझ, मिथ्या अहंकार प्रवृत्ति में ढलने की बात है। अन्य शब्दों में व्यक्त के आकर्षण से जुड़ने पर मन में संकल्प, मोह-ममता का भाव पनपता है जिससे इंसान हर कर्म कामनायुक्त होकर यानि मन में फल की इच्छा रखते हुए करता है व द्वि-द्वेष आदि जैसे निकृष्ट स्वभावों में उलझता है और अव्यक्त अर्थात् आत्मस्वरूप में स्थित बने रहने से मन संकल्प रहित अवस्था में सधा रहता है। फलतः इंसान परमेश्वर सम ही ज्ञानवान, गुणवान व बलवान होकर, उस द्वारा रचित इस मायावी ब्रह्मांड की रमज़ जानने वाला तत्त्वज्ञानी बन, उसमें समझदारी से विचरता है यानि समभाव-समदृष्टि अपनाकर परस्पर सजन भाव का व्यवहार करते हुए विचार, सत्-ज़बान, एक दृष्टि, एकता, एक अवस्था में बना रहता है। इसलिए कहते हैं कि ख़्याल यानि सुरत का अकर्त्ता भाव से सब कुछ करना अव्यक्त प्रकृति में बने रहना है व कर्त्ता भाव से सब कुछ करना व्यक्त प्रकृति में बने रहने का सूचक होता है।

इस संदर्भ में सजनों यह भी जानो कि भगवान श्री विष्णु, परमेश्वर का व्यक्त रूप हैं इसलिए उन्हीं के एक छत्र शासन में बने रहने पर मनुष्य को सत-वस्तु प्राप्त रहती है और आत्मा में परमात्मा का साक्षात्कार बना रहता है। अन्यथा

व्यक्तिगत स्वार्थी भाव इंसान के दिल और दिमाग पर हावी हो जाते हैं और उसी अनुरूप ही उसके व्यक्तित्व अर्थात् गुणों व स्वभावों का निर्माण होता है और उसकी स्पष्ट और स्वतन्त्र सत्ता हौं-मैं के रूप में प्रदर्शित होती है। निःसंदेह ऐसे अहंकारी की मति व सुधबुध स्वार्थवश मारी जाती है इसलिए तो वह अपनी स्वार्थ सिद्धि व अहंकार की तुष्टि हेतु निंदा-उस्तत द्वारा इस तरह दूसरों के समक्ष झूठ पर झूठ बोलता है कि उसका असत्य भी दूसरों को सत्य प्रतीत होने लगे और वे उसके जाल में फँस दुर्भावों व मतभेद का शिकार हो जाएं। यह होता है उस जन्म के वैरी, कुटिल स्वार्थी का खेल जिसमें बड़े-बड़े धोखा खा जाते हैं और अच्छे-भले बसे हुए घर भी बरबाद हो जाते हैं। जान लो कि इस का नतीजा अत्यन्त खतरनाक होता है क्योंकि लिखन वाली लेखनी सब लिखती जाती है और अंत उसे दंड के रूप में महान दुःख भुगतना पड़ता है।

उपरोक्त तथ्य के दृष्टिगत ही सजनों सभी धर्म-ग्रन्थ हर मानव को अनित्य के स्थान पर नित्य अवस्था में बने रहने का आवाहन दे रहे हैं ताकि मानव सूक्ष्मदर्शी यानि सत्य का पारखी बन बारीक से बारीक बात को सोचने-समझने वाला व देखने वाला विवेकशील व बुद्धिमान इंसान बनें और त्रिकालदर्शी हो स्थूलता वाले नश्वर भाव अपनाने से बचा रहे। सजनों यह अपने आप में 'विचार ईश्वर अपना आप' के भाव पर स्थिरता से बने रह, जगत में ईश्वरमय होकर निर्लिप्तता से विचरने की बात है। याद रखो जो भी इस प्रकार ईश्वरमय होकर आत्मीयता के भाव से इस जगत में विचरता है उसे फिर कदाचित् मान-अपमान, सत्ता व शासन आदि की प्राप्ति का कोई भाव नहीं सताता। इस संदर्भ में त्रेता में श्री रामचन्द्र जी का उदाहरण हमारे समक्ष ही है जिन्होंने माता कैकई द्वारा रची गई परिस्थितियों को जग जाहिर करने में कोई मान-अपमान नहीं समझा और उसकी स्पष्टता में आप वन जाना स्वीकार किया। इसके विपरीत यदि वह मान-अपमान में आ जाते तो यह परिस्थितियों को और बढ़ाने की बात होती जिसके परिणामस्वरूप ऐसा विघटन होता जो सर्वनाश का हेतु बनता। द्वापर व कलियुग में भी ऐसा ही

हुआ और अब भी हो रहा है और आगे भी होता रहेगा। कहने का आशय यह है कि हमको भी अपने आस-पास ऐसा घटित होता देखकर इन सब परिस्थितियों के प्रभाववश विचलित नहीं होना अपितु सत्य पर डटे रहना है। अतैव यह सब समझते हुए सजनों हमारे लिए बनता है कि अव्यक्त अवस्था में बने रहते हुए, शक्तिशाली होकर, परमेश्वर की रीति अनुसार बुद्धिमत्ता से उन्हीं गुणों अनुसार जीवन जीने की कला सीखें और अपना व सबका कल्याण करें।

याद रखो सजनों अब तक ऐसा सुनिश्चित न कर पाने के कारण ही हम अपनी मूल सम प्रकृति से च्युत हो, व्यक्त जगत के विषयी पदार्थों के विषयों के साथ जा जुड़े हैं और उनके प्रभाव से हमारे हृदयाकाश में अज्ञान का बादल छा गया है। परिणामस्वरूप हम अपने यथार्थ के प्रति अनभिज्ञ हो जगत में बिना किसी प्रयोजन के निरर्थक इधर-उधर भटक रहे हैं और कष्ट भोग रहे हैं।

अतः सजनों आवश्यकता है पुनः जाग्रति में आ विचार में खड़ा होने की और इस विश्वास से आगे बढ़ने की, कि हृदय पर छाया अज्ञान का यह बादल, सजन श्री शहनशाह महाबीर जी का संग कर उन द्वारा प्रदत्त युक्ति को प्रवान करने से सहज ही हटाया जा सकता है। अतः विषयों में गलतान मत होवो अपितु आत्मविश्वास रखते हुए युक्ति को प्रवान करो व शब्द ब्रह्म रूपी विचारों के अनमोल खजाने का मनन करने के प्रति अपने अन्दर दिलचस्पी पैदा करो। जानो ऐसा करने से भूत-भविष्य कुछ नहीं सताएगा अपितु अपने यथार्थ में ठहरे रहोगे और मन में शुभ भाव/भावनाएँ पनपेंगी। सजनों ऐसा हो गया तो फिर चाहे जीवन में कितनी ही बुरी/नकारात्मक परिस्थितियाँ क्यों न आ जाएं आपका मनोबल कमज़ोर नहीं पड़ेगा यानि आप उनसे घबराकर रुकना पसंद नहीं करोगे अपितु कदम-कदम पर अपने आप को विचार के साथ संभालते हुए दृढ़ता से आगे बढ़ते रहोगे और अंत जगत पर विजय पा अपनी मंज़िल परमधाम को प्राप्त कर लोगे।

आओ अंत में यही बात सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित कीर्तन 'वक्त है इश्नान करो' के माध्यम से समझते हैं:-

श्री साजन जी नेह कलंक अवतार
यह रचना रविवार पोह की 9 तारीख सं० 2011 को हुई

(सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी के मुख के शब्द)

वक्त है इश्नान करो, जल्दी साज दा समय आया है।
शक्ति लक्ष्मी साज पहना के, नाले किरपा निधान सजाया है।।
लिखत विच राहवे लिखत विच न आवे कैसे हो अनादि ओ हां ओ हां।
कैसे हो प्रमादि ओ हूं ओ हूं ओ हां ओ हूं ओ हां ओ हूं।
कैसे हो अनादि ओ हां ओ हां कैसे हो प्रमादि ओ हूं ओ हूं।।
साज पहन लवो निराला, साज देख होय मतवाला।
संख चक्र गदा पद्‌मधार कर, गल बैजन्ती है माला।।
गल बैजन्ती है माला, गल बैजन्ती है माला
संख चक्र गदा पद्‌मधार कर, गल बैजन्ती है माला।।
लिखत विच राहवे, लिखत विच न आवे कैसे हो अनादि ओ हां ओ हां।
कैसे हो प्रमादि ओ हूं ओ हूं ओ हां ओ हूं ओ हां ओ हूं।
कैसे हो अनादि ओ हां ओ हां कैसे हो प्रमादि ओ हूं ओ हूं।।
आप हो अमर, अमर हो गये अमर ही ओ नाम कहाए।
अमर हो गये ओ जगत ते, अमर ही ओ कैसा सुहाये।।
अमर ही ओ कैसा सुहाये, अमर ही ओ कैसा सुहाये।
अमर हो गये ओ जगत ते, अमर ही ओ कैसा सुहाये।।
लिखत विच राहवे, लिखत विच न आवे कैसे हो अनादि ओ हां ओ हां।
कैसे हो प्रमादि ओ हूं ओ हूं ओ हां ओ हूं ओ हां ओ हूं।
कैसे हो अनादि ओ हां ओ हां कैसे हो प्रमादि ओ हूं ओ हूं।।
जब पहुंचे महाराज दे द्वारे, अज हो गया नेह कलंक अवतारे।

ओ हो कैसे ओ रंग बर्षे, ऊपर रिमझिम पवन फुवारे।।
ऊपर रिमझिम पवन फुवारे ऊपर रिमझिम पवन फुवारे।
ओ हो कैसे ओ रंग बर्षे, ऊपर रिमझिम पवन फुवारे।।
लिखत विच राहवे, लिखत विच न आवे कैसे हो अनादि ओ हां ओ हां।
कैसे हो प्रमादि ओ हूं ओ हूं ओ हां ओ हूं ओ हां ओ हूं।
कैसे हो अनादि ओ हां ओ हां कैसे हो प्रमादि ओ हूं ओ हूं।।
आप दी महिमा है अपरम्पार, कौन पा सके कौन पावे ओ पार।
हत्थां विच चमके शक्ति दा हथियार, लक्ष्मी पा रही जे आप नूं हार।।
लक्ष्मी पा रही जे आप नूं हार लक्ष्मी पा रही जे आप नूं हार।
हत्थां विच चमके शक्ति दा हथियार, लक्ष्मी पा रही जे आप नूं हार।।
लिखत विच राहवे, लिखत विच न आवे कैसे हो अनादि ओ हां ओ हां।
कैसे हो प्रमादि ओ हूं ओ हूं ओ हां ओ हूं ओ हां ओ हूं।
कैसे हो अनादि ओ हां ओ हां कैसे हो प्रमादि ओ हूं ओ हूं।।
हार पा लक्ष्मी नाचन लागी, नाले नाचे धनुषधारे।
संग हनुमान जी नाचन, नाले नच रिहा जे दरबारे।।
नाले नच रिहा जे दरबारे, नाले नच रिहा जे दरबारे।
संग हनुमान जी नाचन, नाले नच रिहा जे दरबारे।।
लिखत विच राहवे, लिखत विच न आवे कैसे हो अनादि ओ हां ओ हां।
कैसे हो प्रमादि ओ हूं ओ हूं ओ हां ओ हूं ओ हां ओ हूं।
कैसे हो अनादि ओ हां ओ हां कैसे हो प्रमादि ओ हूं ओ हूं।।

ध्वनि:-

आप हो ओ३म्कार दे अन्दर हां हां।
शक्ति जिते ब्रह्माण्डे हां हां।।
कैसे चमके शक्ति हां हां।
कैसा चमके मन्दिर हां हां।।
कैसी है शोभा आप दी किसे न लखी जाय।

जुर्रत है किस दी वर्णन करे ओ कलम न लिखने पाये।।

इस कीर्तन से स्पष्ट होता है कि इस व्यक्त ब्रह्मांड रूपी अव्यक्त ब्रह्म के खेल को न कोई समझ सकता है और न ही कलम कुछ लिख सकती है क्योंकि उनकी कुदरत अपने आप में कमाल भी है और विशाल भी है। उसके विषय में यदि आप समझदारी से पढ़ो समझो तो फिर आपको कुछ और जानने-समझने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। भरपूर सुकून यानि आत्मतृप्ति प्राप्त हो जाएगी। इस तथ्य को सजनों हम आगामी कक्षा में विस्तार से सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ से उद्धृत कीर्तन 'चरण धोवे जनता मेरे साजन जी दे' के माध्यम से समझेंगे।

दिनाँक 11 नवम्बर 2018 का सबक़

आओ बढ़ें लौकिकता से अलौकिकता की ओर - 2

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,

उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

यह तो सर्वविदित है कि ब्रह्म सबसे बड़ी, परम तथा नित्य चेतन सत्ता है जो जगत का मूल कारण व सत्, चित्त, आनन्दस्वरूप मानी गई है। यही नित्य चेतन सत्ता परमात्मा के नाम से भी जानी जाती है। जानो इसी नित्य चेतन सत्ता में ही हर मानव के लिए, सत्य धर्म के निष्काम रास्ते पर आत्मविश्वास के साथ निर्भयता से स्थित रहने की योग्यता प्राप्त करने हेतु, सच्चा और वास्तविक ज्ञान निहित है और केवल इसी सीधे, सहज और सरल हृदय विदित कुदरती ज्ञान को प्राप्त करने पर ही मानव का मन शांत व चित्त प्रसन्न रह सकता है और उसे आनन्द का अनुभव हो सकता है। कहने का आशय यह है कि इसी के द्वारा, मानव अपने सच्चिदानंद स्वरूप की प्रतीति कर, इस जगत में निर्लिप्तता से विचर सकता है और अपने जीवन का वास्तविक प्रयोजन निष्कंटक सिद्ध कर अपना जीवन सकार्थ कर सकता है।

यहाँ सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में जो सजन श्री शहनशाह हनुमान जी द्वारा 'मूलमंत्र को शब्द गुरु' मानने का आवाहन दिया गया है उसकी सार्थकता

परिलक्षित होती है क्योंकि मूलमंत्र अर्थात् ब्रह्म सत्ता को ग्रहण करने पर ही इंसान 'ईश्वर है अपना आप' के विचार पर स्थित रह यानि ईश्वरीय शक्ति का यथोचित प्रयोग करते हुए परमेश्वर के इस जीव, जगत रूपी कुदरती खेल को समझ भी सकता है और विवेकशीलता से उसे खेलता हुआ जगत विजयी भी हो सकता है। यहाँ यह भी समझना आवश्यक है कि जहाँ समस्त वेद राशि ब्रह्मकोश है वहीं ब्रह्माण्ड की रचना, पालना व उसका कल्याण/संहार करने वाली त्रिशक्तियों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) में से, शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी, श्री विष्णु भगवान कुदरती नियमों अनुसार इस जगत का पालन करने वाले वेदकर्त्ता हैं जिनका सतवस्तु में राज होता है। इसलिए तो सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

चार वेद छः शास्त्र कुदरती आए, कुदरती पये आंवदे ने।

अतः केवल उन एक यानि जगत के पालनकर्त्ता के प्रति समर्पित भाव रख उनका संग प्राप्त करने पर ही मानव वेदों को जान सकता है व एक ब्रह्मज्ञानी मानव की तरह वेद विदित भाव या धर्म अनुसार इस जगत में विचरते समय 'जेहड़ा प्रकाश है मन मन्दिर ओही प्रकाश है जग अन्दर' का अनुभव रखते हुए अभेदता से यानि समभाव- समदृष्टि की युक्ति अनुसार, सबको सजन मान व जान, एक सत्-वादी इंसान की तरह एकता, एक-अवस्था में निर्विकारिता से सधे रह, यथार्थता जीवन जी सकता है। इस प्रकार फिर ऐसे पुरुषार्थी, गुणवान इंसान के लिए सजन भाव पर परिपक्वता से बने रह अपना घर सतयुग बनाना व ब्रह्मगति को पाना सहज हो जाता है।

सजनों आप सब भी कुदरत की रमज़ को जान इस ब्रह्मगति को प्राप्त कर अपना जीवन सकार्थ कर सको इस हेतु आओ अब इसी बात को सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ से उद्धृत कीर्तन 'चरण धोवे जनता मेरे साजन जी दे', के माध्यम से समझते हैं:-

(श्री हनुमान जी के मुख के शब्द)

शब्दः-

चरण धोवे जनता मेरे साजन जी दे।।

(श्री साजन जी उत्तर देते हैं)

आप हो पिता आप हो दाता, फिर मैं तो बालक इन चरणां दा हुआ।।

(श्री महाबीर जी उत्तर दे रहे हैं)

ओ फिर कौन पिता और कौन दाता हुआ।
सर्व दिस्सो सारी नगरी ऊपर।
अनेकां दा फिर एक हुआ, जैं अपना आप पहचान किया।।

(श्री साजन जी कह रहे हैं)

समझन विच नहीं पाई ओ जांदी, दाता जी बात तुम्हारी।
कौन समझे कौन समझ सके, हो तुसां जगत हितकारी।
समझन विच नहीं पाई ओ जांदी, दाता जी बात तुम्हारी।।
कुदरत कमाल साडी, कुदरत विशाल साडी।
कुदरत दा करे वर्ताव, कुदरत मिसाल है साडी,
कुदरत मिसाल है साडी।।
कुदरत है साज मेरा, कुदरत लिबास मेरा, कुदरत अजीब दिखाई।
कुदरती रौशनी आई, कुदरती रौशनी आई।।
कुदरत विश्वास मेरा, कुदरत इतिहास मेरा, कुदरत बनत बनाई।
कुदरत नाल यारी लाई, कुदरत नाल यारी लाई।।
कुदरत जमाल मेरा, कुदरत नौनिहाल मेरा, कुदरत रमज़ दिखाई।

कुदरत समझ में आई, कुदरत समझ में आई।।
कुदरत करामात है, कुदरत ही ओ दात है, कुदरत कमाई दिखाई।
कुदरती जित उसने पाई, कुदरती जित उसने पाई।।
कुदरत ही राम रहीम, कुदरत ही कृष्ण करीम।
कुदरत ही दसपातशाही, कुदरत ही दसपातशाही।।
अनेक दा फिर मैं एक दिस्सां कुदरत ने ही जित पाई।
कुदरत ने ही जित पाई, कुदरत ने ही जित पाई।।

दोहा:-

कुदरत रूप रंग न रेखा, कुदरत जगत सबाई।
कुदरत आद अन्त है, कुदरत कुदरती रौशनी आई।।

(श्री साजन जी कह रहे हैं)

बस सीस मेरा है इन चरणों दे ऊपर,
फिर आप तो हो सीस ताज जी।
आप हो दाता जी मेरे, फिर आप हो अटल राज जी।।

(श्री रामचन्द्र जी श्री साजन जी को कह रहे हैं)

बस अज त्रिलोकी दा राज असां दे दित्ता,
असां बक्ष दित्ती सारी राजधानी।
अज त्रिलोकी दा दे दित्ता ख़िताब सजनों।।
फिर साजन हो गये ने राजन और महाराजन सजनों।
फिर कौन बोले ते कौन बोल सके, ते कौन है बोलने वाला।।

सजनों जानो कि सब कुदरत की ही बनत है यानि सब उसी के बनाए हुए खिलौने हैं। हर तरफ उसी का खेल ही चल रहा है। अगर अपना जीवन सफ़ल बनाना है तो कुदरत के खेल को तो समझदारी से समझना ही पड़ेगा।

निःसंदेह इस हेतु पूरी तरह से सतर्क व सचेत होना होगा और केवल शब्द ब्रह्म विचारों को धारण कर व्यवहारिक जीवन में उनका प्रयोग करने की कला में निपुण होना होगा। यकीन मानो कि यदि गंभीरता से मात्र इतना ही कर लिया तो निर्भय होकर न्यायसंगत इस जगत में विचर सकोगे और भवसागर से पार उतर सुनिश्चित रूप से सफलता प्राप्त कर सकोगे। आओ अब इसी अटल विश्वास के साथ सफलता प्राप्ति हेतु आगे बढ़ते हैं और इस कीर्तन के भावार्थ को समझते हैं:-

भावार्थ

इस कीर्तन के अंतर्गत सजनों सजन श्री शहनशाह हनुमान जी श्री साजन परमेश्वर को कह रहे हैं कि समय अनुसार सर्वसाधारण इंसान अर्थात् जनता अपने मूल के संग स्थिरता से बने रह, वास्तविक रूप से वैसा ही निष्पाप आचरण अपनाने हेतु आपकी समीपता प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न कर रही है।

सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की इस बात का उत्तर देते हुए आगे श्री साजन जी उनकी उपमा करते हुए कहते हैं कि आप ही तो इस त्रिलोकी के पिता व सब कुछ देने वाले दाता हो। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए मैं तो इन चरणों का बालक हूँ। सजनों जिस भोले भाव से उन्होंने यह बात कही, उसको दृष्टिगत रखते हुए, परस्पर अभेदता को स्पष्ट रखते हुए, श्री महाबीर जी श्री साजन जी को उत्तर देते हैं कि 'कौन पिता और कौन दाता', आप ही तो विराट् दर्शन के रूप में इस सृष्टि में सर्व-सर्व दृश्यमान हो। अतः जो भी इंसान इस वास्तविकता को पहचान तद्नुरूप भाव अपना लेता है, केवल वह ही अपने मन से अनेकता का भाव त्याग, एकता जैसा अनुपम भाव अपना सकता है यानि समभाव में स्थित हो सकता है।

यह सार्थक बात सुन कर श्री साजन जी कह उठे कि हे दाता ! आपके वचनों की गहराई को आम इंसान की बुद्धि या ख़्याल नहीं समझ पाता, तो फिर

कौन-कैसे इस तथ्य को धारण कर, अपनी समझ में ठहरा सकता है कि आप ही जगत हितकारी हो। आगे वह अपनी कुदरत का परिचय देते हुए बताते हैं कि हमारी कुदरत अद्भुत व परिपूर्ण होने के साथ-साथ देखने में बहुत सुंदर और भव्य है यानि कमाल व विशाल है। जो भी मेरी इस कुदरती प्रकृति को अपने स्वभाव के अंतर्गत कर व्यवहार में लाने योग्य बन जाता है वही प्रभुत्व को प्राप्त हो, जगत में एक मिसाल बन, यश-कीर्ति प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है।

आगे इस बात को खोल कर बताते हुए श्री साजन जी कहते हैं कि कुदरत ही मेरी सजावट/ठाठबाट व दिव्य पोशाक है। इस विलक्षण कुदरत को प्रकट करने के लिए ही ईश्वरीय शक्ति अर्थात् कुदरती रोशनी आई है। यही ईश्वरीय शक्ति विश्वकर्त्ता होकर इस जगत में सारे कार्य निपुणता से करने हेतु मेरा विश्वास है और मैं युग युगांतरों से इसी विश्वास से ही सब कुछ करता रहा हूँ यानि यही मेरा इतिहास है। अब भी कुदरत ने ही मेरे अन्दर प्रभुत्व का भाव जगा व प्राकृतिक स्वभावों के उचित वर्त-वर्ताव की युक्ति प्रदान कर, मुझे परमेश्वर के अनुकूल बनाया है। इसलिए तो अब मैंने उसी अधिकार से, प्राकृतिक प्रवृत्ति में ढल इस जगत का उचित ढंग से कल्याण करने हेतु कुदरत संग यारी अर्थात् मित्रता लगाई है। यहाँ सजनों अफुरता से अजपा जाप में लय रहते हुए अपने मन-चित्त को शांत रखने की महत्ता समझ में आती है। अब कुदरत ही मेरा जमाल अर्थात् सौन्दर्य है और कुदरत ही मेरा नौ निहाल है यानि मेरी समृद्धि व प्रसन्नचित्त रहने का आधार है और इस रहस्य यानि रमज़ से कुदरत ने ही मुझे परिचित कराया है। अब मुझे कुदरत का भेद समझ आ गया है। मैं जान गया हूँ कि कुदरत सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर की करामात यानि करिश्मा है जो कारियों के कारीगर द्वारा बख़्शी हुई पवित्रता से परिपूर्ण दात है। अतः कुदरत ने ही इस विशुद्ध दात को कमाने का भाव मेरे मन के अन्दर विकसित किया है। अतैव मानो कि जो इस कुदरती कमाई को कमाने में अर्थात् अपने अंतःकरण को विशुद्धता का प्रतीक बनाने में समर्थ होता है केवल वह ही ईश्वरीय शक्ति के प्रयोग द्वारा अपने मन

सहित कुल ब्रह्मांड पर विजय पा सकता है। इसलिए तो वह आगे कहते हैं कि राम-रहीम, कृष्ण-करीम व दसपातशाही सब कुदरत ही है यानि उनमें परस्पर कोई भिन्न-भेद नहीं है। जो इस तथ्य को जान व मान लेता है उसे सर्व-सर्व मैं एक ही निगाह आता हूँ और उसके अन्दर से अनेकता का भाव छँट जाता है। इस प्रकार वह प्रभुत्व को प्राप्त हो जाता है। यह अपने आप में कुदरत अर्थात् ईश्वरीय शक्ति के विजयी होने जैसी शुभ बात होती है। आगे कुदरत की रमज़ बताते हुए वह कहते हैं कि चाहे कुदरत का कोई रूप-रंग-रेखा नहीं है पर कुदरत सम्पूर्ण जगत में व्याप्त है। इस तथ्य को आगे खोल कर बताते हुए वह कहते हैं कि कुदरत आद्-अंत है और ईश्वरीय रौशनी अर्थात् प्रकाशमय होने के कारण सर्वत्र ईश्वर का ही अद्‌भुत चमत्कार है।

यह सब कहने के पश्चात् श्री साजन सजन श्री शहनशाह हनुमान जी को कहने लगे कि मेरा सीस आपके चरणों में समर्पित है। आप ही मेरे सीस ताज हो व आप ही मेरे दाता हो और आप ही अटल राज हो जी। इस मनोरम वार्तालाप को सुनकर सभा में विराजमान सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी अति प्रसन्न हो उठे और श्री साजन जी को सम्बोधित करते हुए कह उठेः-

बस अज त्रिलोकी दा राज असां दे दित्ता,
असां बक्ष दित्ती सारी राजधानी।
अज त्रिलोकी दा दे दित्ता ख़िताब सजनों।।
फिर साजन हो गये ने राजन और महाराजन सजनों।
फिर कौन बोले ते कौन बोल सके, ते कौन है बोलने वाला।।

सजनों यह सब जानने के पश्चात् हम मानते हैं कि आप सबके अन्दर भी इस सर्वोच्च दात को प्राप्त करने की उत्कंठा पैदा हो गई होगी। अगर ऐसा ही है तो आप भी सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के वचनों का आदर करते हुए किसी कारण भी सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित शब्द ब्रह्म विचारों को धारण करने में कमज़ोर मत पड़ो और अपनी दोनों वृत्तियों में इन सद्-विचारों पर स्थिरता से बने रह जो प्रकाश है मन-मन्दिर उसी प्रकाश का कुल दुनियां

में अनुभव करते हुए सत्यप्रकाशी बनो। जानो अगर आपने महाराज जी के यह वचन सच्चे दिल से प्रवान कर लिए यानि उस चमत्कार के साथ निगाह जोड़ ली तो आप भी अर्जुन की तरह संसारी व परमार्थी दोनों राज्य प्राप्त करने के अधिकारी बन जाओगे और ज्योति स्वरूप परब्रह्म परमेश्वर नाम कहाओगे। आशय यह है कि बुद्धिमत्ता से किए हुए मात्र इतने से पुरुषार्थ से सत्य प्रकट हो जाएगा और आपका ख़्याल प्रभु में लीन हो जाएगा। अतः अपने ख़्याल को हर तरफ से मोड़ कर ईश्वर की ओर जोड़ लो क्योंकि जैसा कि कहा भी है:-

न लगाव हो, न झुकाव हो
ख़्याल का, ओजी ख़्याल का, दृश्यों की ओर
मानवता के उत्थान हेतु
मोड़ लो, मोड़ लो, मोड़ लो, ख़्याल साजन जी की ओर

श्री साजन की ओर, हाँ ईश्वर की ओर
जी मोड़ लो ख़्याल, श्री साजन की ओर
श्री साजन की ओर, हाँ ईश्वर की ओर

दिनाँक 18 नवम्बर 2018 का सबक़

प्रभु मिलन का उचित मार्गदर्शन

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,
उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा
सजनों प्रभु मिलन के ये आधारभूत सूत्र हैं जिन्हें अपनाना आवश्यक है।

जैसा कि सजनों हम सब जानते हैं कि समय व्यतीत हो रहा है। समय के साथ-साथ यह युग, अमूल्य जीवन और आयु की घड़ियाँ भी व्यतीत हो रही हैं और हम किए कर्मों अनुसार अपनी अंतिम परिणति की ओर बढ़ रहे हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि इस गतिशील परिवर्तन को जानते-मानते हुए भी न तो हम इस परिवर्तनशील व बलवान समय के महत्त्व को समझते हुए युग चेतना को धारण कर तद्नुरूप अपने आचार-विचार व व्यवहार को ढालने वाले युगधर्मी बन पा रहे हैं और न ही दुर्लभता से प्राप्त हुए इस मानवीय चोले को सार्थक कर अपना जीवन बनाने के महत्त्व को समझ पा रहे हैं। यही कारण है कि हम एक उद्यमी व कर्मठ मानव की तरह अपने जीवन के परम पुरुषार्थों को योजनाबद्ध एवं निष्कामता से सिद्ध करने के स्थान पर स्वार्थपरता, आलस्य, निद्रा, कलह, वाद-विवाद, वैभव, ऐश्वर्य, मान-मर्यादा, झूठी शान-ओ-शौकत, प्रतिस्पर्धा, आमोद-प्रमोद व अनेकानेक व्यसनों का शिकार हो अपना जीवन बरबादी की ओर धकेल रहे हैं।

इस संदर्भ में सजनों सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के द्वारे पर होने के नाते व सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ व उसमें विदित शब्द ब्रह्म विचारों के परम श्रेष्ठ मार्गदर्शन के बावजूद हम इस पाप के भागी न बनें और समय रहते ही अपने जीवन की अनमोलता को स्वीकार कर इसे अपने व सबके हित साधन का निमित्त कारण बना पाएं, इस हेतु आवश्यकता है सजनों समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार संतोष-धैर्य का श्रृंगार पहन व परोपकार प्रवृत्ति में ढल, निष्काम भाव से सच्चाई-धर्म की राह पर निरंतर अग्रसर होते हुए खुद को, परिवार को व समाज को जीर्ण करने वाली मान्यताओं को समाप्त कर/सुसंस्कृत कर सतयुगी नवीन मान्यताओं को स्थापित करने की व इस तरह एक सदाचारी व सजन पुरुष बनने की। यह कार्य सहजता से कैसे सिद्ध हो सकता है इस हेतु आओ अब ध्यान से सुनते व समझते हैं कि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कैसे इस जग में सद्मार्ग से भूले-भटके इंसानों को कीर्तन 'गरुड़ ते जब चल पड़े, गरुड़ मारे टपोली' के माध्यम से ईश्वर मिलन की सही राह दिखा रहा हैः-

(सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी के मुख के शब्द)

शब्दः

गरुड़ ते जब चल पड़े गरुड़ मारे टपोली।
चार चुफेरियों फिर फिरा के, पहुँचे सप्त द्वीप में।
आहा सप्त द्वीप में, आहा सप्त द्वीप में।।
भूमण्डल फिर फिरा के गरुड़ पहुँचे गगन मण्डल में।
आहा गगन मण्डल में, ओहो गगन मण्डल में।।
ओथे कैसा है विश्राम, शक्ति खड़ी है दरबान।
कैसे जगे ओ जगत महान, पहुँचे जब गगन मण्डल में,
आहा पहुँचे गगन मण्डल में।।
गरुड़ पहुँचे दरबार में, हकूमत दी कुर्सी ते बैठ गये।
ओ बैठे खेल खिलारी, आहा बैठे लीलाधारी।।

हेठां संस्था बैठ गई, कुर्सी ते बैठे कान्ह कन्हाई।
ओ बैठे हिन बनवारी, आहा बैठे हिन बनवारी।।

(श्री साजन जी कह रहे हैं)

सजनां नूं समझन विच नहीं आऊंदी, प्रभु जी नूं किस तरह पाउणा है।
प्रभु नूं किस तरह पाउणा है, प्रभु जी नूं किस तरह रिझाउणा है।।
प्रभु जी हैन ओ परवरदिगार, आलम सारी रही जे ओन्हां नूं पुकार।
निर्मल प्रेम जैंदा होवे प्यार, तदों प्रभु जी नूं मनाउणा है।।
तदों प्रभु जी नूं मनाउणा है, तदों प्रभु जी नूं मनाउणा है।
निर्मल प्रेम जैंदा होवे प्यार, तदों प्रभु जी नूं मनाउणा है।।
प्रभु जी दा समभाव नाल है जे ओ प्यार।
सन्तोष धैर्य दा दिखाउणा है जे ओ सिंगार।।
सच्चाई धर्म दे रस्ते ते चलदे जाना,
फिर प्रभु जी दा दर्शन ओ पाउणा है।
फिर प्रभु जी दा दर्शन ओ पाउणा है,
फिर प्रभु जी दा दर्शन ओ पाउणा है।
सच्चाई धर्म दे रस्ते ते चलदे जाना,
फिर प्रभु जी दा दर्शन पाउणा है।।
प्रभु जी दी धुर दी है बाणी, किसे विरले सजन ने है पहचानी।
पहचाने कोई विरला ओ सजन, प्रभु जी दी रमज़ जैं जाणी है।।
प्रभु जी दी रमज़ जैं जाणी है, प्रभु जी दी रमज़ जैं जाणी है।
पहचाने कोई विरला ओ सजन, प्रभु जी दी रमज़ जैं जाणी है।।
प्रभु दा ओन्हां प्रेमियां नाल है जे ओ प्यार,
जेहड़ा खालस सोने दा पावे ओ सिंगार।
एक निगाह जैंदी एक है दृष्टि, उस मेल प्रभु जी नाल ओ खाणा है।।
उस मेल प्रभु जी नाल ओ खाणा है,
उस मेल प्रभु जी नाल ओ खाणा है।

एक निगाह जैंदी एक है दृष्टि, उस मेल प्रभु जी नाल ओ खाणा है।।
प्रभु जी नाल मेल ओ खा करके, गगन मण्डल ओहदा टिकाणा है।
ओहदा हो गया ज्योति स्वरूप अपना आप,
प्रभु नाल ओ प्रभु हो जाना है।।
प्रभु नाल ओ प्रभु हो जाना है, प्रभु नाल ओ प्रभु हो जाना है।
ओहदा हो गया ज्योति स्वरूप अपना आप,
प्रभु नाल ओ प्रभु हो जाना है।।

ध्वनिः- खालस सोना होके आओ,
सजनों मेल प्रभु नाल खाओ।

भावार्थ

इस कीर्तन के माध्यम से समझ आती है कि सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी व श्री साजन जी जब गरुड़ पर असवार होकर दरबार की ओर चल पड़े तो सप्तद्वीप पहुँचने तक का, मध्य का रास्ता पार करने हेतु, गरुड़ ने ऐसी टपोली मारी अर्थात् उछाल भरी कि वे चार चुफेरी फिर-फिरा के सप्तद्वीप में पहुँच गए। इसके पश्चात् भूमंडल में फिर-फिरा के वे गगनमंडल में जा पहुँचे और वहाँ सुख-चैन का विश्राममय वातावरण देख हर्षा उठे। फिर वहाँ वैसी ही व्यवस्था सदा एकरस कायम रखने हेतु निर्धारित शक्ति (यानि वह तत्त्व जो सब काम करता है, कराता है या कोई अभीष्ट सिद्ध करने हेतु क्रियात्मक रूप में अपना प्रभाव दिखाता है उस) को दरबान अर्थात् द्वारपाल के रूप में खड़ा देख उसकी उपमा करते हुए कहने लगे कि देखो ! यह जगत महान कैसे जगमगा रही है? इस तरह गगनमंडल की सैर कर जब गरुड़ दरबार में पहुँच गया तो वे हकूमत की कुर्सी पर विराजमान हो गए और हेठां संस्था बैठ गई। उनको हकूमत की कुर्सी पर बैठा देख संस्था सम्बोधनसूचक शब्द का प्रयोग करते हुए हर्ष ध्वनि में कह उठी कि सिंहासन पर विश्व रूपी विचित्र रचना के खेल खिलाड़ी विराजमान हो गए हैं। इस तरह प्रसन्नता के भाव में आ वे कहने लगे कि यही तो हैं लीलाधारी लीलापुरुषोत्तम यानि कान्ह

कन्हाई। ऐसा अद्भुत नज़ारा दृष्टिगत कर सब मंत्रमुग्ध होकर सिंहासन पर बैठे बनवारी को निहारते हुए आश्चर्यचकित होकर हर्षित ध्वनि में बार-बार वैसा ही कहते हुए सबका ध्यान उधर आकृष्ट करने की चेष्टा करने लगे।

इस तरह सजनों जब समूचा दरबार लग गया तो श्री साजन जी कलुकालवासियों की मंद अधम मानसिक स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए कहने लगे कि हज़ार यत्न करने पर भी आज के आम आदमी को यह बात समझ में नहीं आती कि आत्मबोध द्वारा प्रभु अर्थात सम्पूर्ण विश्व के मालिक ईश्वर का साक्षात्कार करने में समर्थ हो, कैसे उन्हें जानना व पाना है? यह अज्ञानी यह युक्ति भी नहीं जानते कि इस शुभ कार्य की सिद्धि हेतु उस प्रभु का अनुरागी बन यानि गुण ग्रहण कर उन्हें कैसे रिझाना अर्थात् लुभाना है? ऐसे दुर्मति सजनों के बिखरे हुए ख़्याल को परमेश्वर संग जोड़ने के प्रति प्रेरित करने के लिए वह प्रभु की महिमा गाते हुए कहते हैं कि वह तो परवरदिगार अर्थात् सबकी पालना करने वाले हैं और चाहे सारी आलम यानि संसार उन्हें पुकार रहा है परन्तु याद रखो उनको अपने जीवन का प्रयोजन सिद्ध करने हेतु निष्काम प्रार्थना द्वारा वही प्रसन्न कर मना सकता है जिसके हृदय में उनके प्रति दोष रहित अर्थात् शुद्ध प्रेम व प्यार हो। कहने का आशय यह है कि इस हेतु तो उस स्नेही परमेश्वर को सर्वश्रेष्ठता का प्रतीक मानकर उन पर अटल विश्वास रखते हुए श्रद्धापूर्वक सदा उन संग बने रहने की मनोवृत्ति अपनानी होगी। इस तरह इस बात पर और अधिक बल देते हुए वह बार-बार इस कथन को दोहराते हैं।

तत्पश्चात् वह द्वैतवाद में उलझे हुए भ्रमित बुद्धि इंसानों को जीवन का अविचारयुक्त रास्ता छोड़ विचारयुक्त रास्ता अपनाने हेतु प्रेरित करने के लिए, अत्यन्त सरल शब्दों में इस तथ्य से परिचित कराते हैं कि जानो परमेश्वर का केवल समभाव यानि समान प्रकृति रखने वाले समबुद्धि इंसानों से ही प्यार है, अतः सब जंत्र मंत्र-तंत्र छोड़ कर समभावी बनो। निःसंदेह आरम्भ में यह कठिन लगेगा परन्तु फिर तो धीरे-धीरे आदत बन जाएगी। फिर जब ईश्वर का प्यार मिलने लगेगा तो अच्छा लगेगा। इस तरह वह बहिर्मुखी इंसानों को

अंतर्मुखी हो, प्रभु का दर्शन पा, समभावी बनने हेतु संतोष-धैर्य का श्रृंगार पहन, मन-वचन-कर्म द्वारा सच्चाई-धर्म के रास्ते पर स्थिरता से चलते जाने का आवाहन देते हैं।

यहाँ संतोष-धैर्य का अर्थ स्पष्ट करते हुए बता दें कि जहाँ संतोष किसी बात की इच्छा, चिंता या शिकायत न करते हुए सदा तृप्त व प्रसन्नचित्त बने रहने का स्वभाव है वहीं धैर्य चित्त को स्थिर रखते हुए सदा निर्विकारी बने रहने का भाव है अर्थात् मन में किसी कारण भी उद्वेग यानि व्याकुलता के भाव को न उत्पन्न होने देना है। इस श्रृंगार को पहनने के पश्चात् इन्सान अपने निर्विकारी स्वरूप में स्थित हो जाता है। इस संदर्भ में श्री साजन कहते हैं कि हे इन्सानों ! मन, बुद्धि को स्थिर रखने वाली स्वाभाविक पोशाक से सुसज्जित हो, निर्भयता से सच्चाई अर्थात् उत्तम आचरण द्वारा यथार्थता से यानि जैसा है वैसा ही जीवन जीते हुए सत्य को धर्मसंगत प्रतिष्ठित करने का पुरुषार्थ दिखाओ। फिर इसके प्रति वह सभी को सावधान करते हुए बताते हैं कि प्रभु के मुख से निकली हुई वाणी अर्थात् सार्थक शब्दों के रूप में व्यक्त विचार ही नितांत सत्य है। यद्यपि यह सत्य ही इंसानियत में सुदृढ़ता से बने रहने हेतु हर मानव के लिए अपनाने योग्य है तथापि विडम्बना यह है कि इस संसार में कोई विरला ही इस सत्य यानि धुर की वाणी को पहचान पा रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में उस विरले की विशेषता बताते हुए वह स्पष्ट करते हैं कि जानो प्रभु की सदा एकरस रहने वाली उस आद् वाणी को वह विरला सजन ही पहचान सकता है जो इस सृष्टि के वाली यानि अव्यक्त अथवा अज्ञात ईश्वर के संकेतों के भावार्थों को समझकर उन्हें व्यक्त कर सकता है और इस तरह उच्च बुद्धि, उच्च ख़्याल हो ईश्वर की रमज़ अर्थात् अपने जीवन की मर्म को जान जाता है। फिर वह यह बात सभी सजनों की स्मृति में बिठाने के लिए बार-बार दोहराते हैं।

आगे इसके प्रति यत्नशील सजनों के पुरुषार्थ को सही दिशा प्रदान करते हुए वह उन्हें स्पष्टता देते हैं कि ईश्वर को वही प्रेमी प्यारे लगते हैं जो खालिस

सोने का श्रृंगार पहन लेते हैं अर्थात् जो अपने अंतःकरण को विशुद्ध कर अपना हृदय सचखंड बना उसे सद्‌गुणों से भरपूर कर लेते हैं। इस बात को आगे बढ़ाते हुए वह कहते हैं कि इस तरह जो भी इंसान 'जो मन मन्दिर प्रकाश है, उस प्रकाश को जग अन्दर जनचर, बनचर, जड़-चेतन' सब में देखने में समर्थ हो, एक निगाह एक दृष्टि हो जाता है वही जगत के समस्त कार्यव्यवहार करते हुए अपना ख़्याल ध्यान द्वारा महाराज जी के साथ अखंडता से जोड़े रख पाने की कला में निपुण हो जाता है और एक ख़्याल हो प्रभु नाल मेल खाता है। यह अपने आप में सजनों आत्मकल्याण की बात होती है क्योंकि जब ऐसे एक निगाह एक दृष्टि, एक दृष्टि एक दर्शन में स्थित इंसान का प्रभु संग मेल यानि समागम हो जाता है तो वह गगनमंडल में स्थिर हो जाता है। परिणामतः उसे ज्योति स्वरूप अपना आप की प्रतीति हो जाती है और ऐसा अद्‌भुत होते ही वह ईश्वरमय हो जाता है। यह सब विस्तार से बताने के बाद वह सभी सजनों को आवाहन देते हैं किः-

खालस सोना होके आओ, सजनों मेल प्रभु नाल खाओ।

यह सब सुनने समझने के पश्चात् सजनों हमारे लिए बनता है कि हम अपने मन से बिना तर्क स्वार्थपरता के कुटिलता वाले स्वभाव छोड़ने व सुदृढ़ता से परमार्थ के रास्ते पर आगे बढ़ने का संकल्प लें। इस हेतु उनके इस जीवनप्रदायक संदेश को समझें व अपनी स्मृति में रखते हुए बताई हुई विधि अनुसार एक विवेकशील इंसान की तरह अपना हृदय सचखंड बना, प्रभु नाल मेल खा, प्रभु संग प्रभु हो जाएँ। अन्य शब्दों में बुद्धिमत्ता इसी में है कि हम काल का ग्रास बनने से पूर्व ही यानि इस जीवन काल में ही समविद् व्यवहार अर्थात् चेतनायुक्त व्यवहार के बल पर सबके प्रति अपने समस्त कर्त्तव्यों का समयबद्ध कुशलतापूर्वक संपादन करते हुए अपने जीवन की दिव्यता को दृढ़तापूर्वक आत्मसात् कर कालातीत हो जाएँ यानि अपनी अजर अमर हस्ती का सत्य पहचान आनन्दमय जीवन व्यतीत करते हुए अपने घर परमधाम पहुँच विश्राम को पाएं।

अंत में अगर अपने जन्म की बाज़ी जीतने के लिए तत्पर हो तो ऐसा हितकर पुरुषार्थ दिखाने में मत सकुचाना और अपने जीवन चरित्र को सुन्दरता व पावनता का प्रतीक बनाने के लिए सजन भाव अपनाने की महत्ता को समझ परस्पर एकता में बने रहना। इस संदर्भ में याद रखना कि सजनता ही एक मानव के चरित्र का सिंगार होती है। अतः सजनता अपनाना और अपने मन को शांत रखते हुए मौन वृत्ति धारण करना। यह कार्य कैसे सिद्ध हो सकता है इस संदर्भ में सजनों आगामी सप्ताह से हम मौन वृत्ति के विषय में बातचीत करेंगे।

मौन-1

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,
उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

जैसा कि सजनों हम सभी जानते ही हैं कि हम एक साथ दो प्रकार के जगतों में विचरते हैं। एक प्रकार का जगत वह है जो हमारे बाहर है तथा दूसरे प्रकार का जगत हमारे चित्त के भीतर है। बाहर का जगत बहिर्जगत यानि भौतिक जगत कहलाता है और इसकी रचना इन्द्रिय-विषयों द्वारा होती है तथा अन्दर का जगत, मानसिक जगत कहलाता है व इसकी रचना इन्द्रियों की मदद से मन करता है। ये दोनों ही प्रकार के जगत सजनों हम इंसानों को सांसारिक व मानसिक प्रपंचों में बाँधे या घेरे रहते हैं और एकाग्रचित्तता व निर्मलता के अभाव में, आवागमन के चक्कर में फँसाए रखते हैं। अतः नश्वर शारीरिकता के भाव को त्याग, 'अमर है आत्मा व आत्मा में है परमात्मा' इस नित्य भाव को धारण कर, इनके दुष्चक्र से विमुक्त होना यानि मौन होना अनिवार्य है। इसलिए सजनों समस्त धर्म ग्रन्थों व वेद-शास्त्रों में, भांति-भांति के बाल अवस्था वाले आडम्बर व कर्मकांडयुक्त कमज़ोर भक्ति भाव त्याग कर, समभाव-समदृष्टि की युक्ति के अनुकूल, बाह्य विषयों से रचित

सांसारिक प्रपंचों का निवारण करने हेतु इन्द्रियनिग्रह करने का तथा भीतरी मानसिक प्रपंचों का निवारण करने हेतु चित्तवृत्तियों का निरोध कर अन्तर्मुखी बनने का यानि ब्रह्म भाव अपनाकर निज परमात्म स्वरूप की ओर उन्मुख होने का निर्देश दिया गया है जिसके विषय में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में इस तरह कहा गया है:-

हुन अन्दर जुड़ो जी, बैरूनी छडो वृत्ति।
बैरूनी वृत्ति विच लाभ न कोई,
अन्दरूनी वृत्ति विच प्रसन्नता होई।
हुन प्रसन्नता होई जी बैरूनी छडो वृत्ति,
हुन अन्दर जुड़ो जी बैरूनी छडो वृत्ति।

इससे सजनों स्पष्ट होता है कि चित्त की वृत्तियों द्वारा हम स्थूलता की ओर जाते हैं अर्थात् बहिर्मुख होते हैं जबकि आत्मस्वरूप का बोध करने हेतु हमें स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जाना होता है अर्थात् विराट् से रूप-रंग-रेखा रहित सूक्ष्म अवस्था की ओर उन्मुख हो अन्तर्मुख होना होता है जिसके लिए आवश्यकता होती है मौन की। इसलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में यह भी कहा गया है:-

सजनों भक्ति पहले बाल अवस्था में थी,
जब से समभाव-समदृष्टि की पढ़ाई आई है।
भक्ति युवा अवस्था में आ गई है।
इसलिए बैरूनी वृत्ति अब शोभा नहीं देती।
वृत्ति मौन की होनी चाहिये। मौन का नतीजा है विश्राम।
खलबली को हटाते हुए सब सजन विश्राम पावें।

निःसंदेह सजनों ये शब्द जहाँ प्रत्येक सजन को सामयिक परिवर्तन के अनुकूल बाल अवस्था का कमज़ोर भक्ति भाव त्याग कर, युवावस्था का सशक्त भक्ति भाव अर्थात् समभाव-समदृष्टि की युक्ति को अपनाने का

आवाहन दे रहे हैं वहीं इस संदर्भ में पूर्ण कामयाबी प्राप्त करने हेतु, बैहरुनी वृत्ति को त्याग कर, अन्दरूनी मौन वृत्ति को अपनाने का भी निर्देश दे रहे हैं। हम सब भी इस मौन वृत्ति को अपना कर विश्राम को पा सकें, इस हेतु आओ सजनों मौन के अर्थ को विस्तार से समझते हैंः-

मौन क्या है?

साधारण शब्दों में सजनों न बोलने या चुप्पी साधने की क्रिया को मौन कहते हैं लेकिन मात्र चुप रहने का नाम मौन नहीं है। चुप तो आदमी हज़ारों कारणों से रह लेता है परन्तु जब तक मन बोलता है तब तक मौन साधना सहज संभव नहीं हो पाता। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि मन बोलता क्यों है? मन तब बोलता है जब वह विषयासक्ति में फँसे इंसान को कमजोर व उसकी बुद्धि को संसार में भ्रमित हुआ जानता है। ऐसा होने पर ही वह इंसान पर हावी हो जाता है और संकल्प-विकल्प की तरंगें उत्पन्न कर, व्यर्थ का अनर्गल काल्पनिक वार्तालाप करता रहता है। इससे सजनों ऊर्जा का अपव्यय होता है। अतः इस अपव्यय को रोकने के लिए मन को मौन रखना अनिवार्य माना जाता है तथा इसके लिए प्रणव मंत्र यानि आद् अक्षर का ख़्याल द्वारा अजपा जाप करना पड़ता है। धीरे-धीरे इस अभ्यास में प्रवीण होने पर मन उपशम हो अफुर यानि शांत हो जाता है और व्यक्ति अंतर्मुखी हो मौन हो जाता है। इस महत्ता के दृष्टिगत ही सजनों वाणी के मौन से उत्तम मन का मौन माना जाता है यानि मन के खामोश यानि मिटने का नाम मौन है। जब यह मौन सध जाता है तो मन के भीतर कोई विचार या संकल्प-विकल्प की तरंगें नहीं उठती अपितु वह तो निःशब्द हो जाता है और सच्चिदांनद का अनुभव होता है। अतः याद रखो मौन का अर्थ है निःशब्द होना। उसका वास्ता तो मन की ऐसी निर्विचार अन्तर्दशा से है जो बोलने से भी भंग नहीं होती। इसलिए तो कहा भी गया है कि जो मौन रहना सीख जाता है वह जगत से ऊपर उठ, ईश्वरीय वाणी अर्थात् धुर की वाणी का श्रवण करने की कला सीख जाता है और उसे तत्क्षण समझ में आ जाता है कि चिरंतन शांति कहाँ प्राप्त होती है। इस

शाश्वत शांति को प्राप्त करने वाला साधक शब्दातीत हो सहज ही समझ जाता है कि हृदय, दिमाग और शरीर को एक अवस्था में साधे रखने पर सहज ही पूर्ण मौन की स्थिति उत्पन्न होती है। इसके विपरीत बलपूर्वक मौन करने के लिए मन से झगड़ना पड़ता है, प्रयत्न करना पड़ता है जो आज के दूषित वातावरण में लगभग असंभव सी बात लगती है। जानो मन उपशम होते ही यह कार्य सहज हो जाता है और सच्चा मौन स्वयं ही भीतर से आ जाता है और स्वाभाविक होता है। अतः हर हालात में मन का मौन, वाणी के मौन से उत्तम है क्योंकि इस अवस्था में आने पर इंसान मनःशांति के प्रभाव से सदा सर्वहितकारी सार्थक बात ही करता है। इस अवस्था में आने हेतु सजनों शास्त्र कह रहा है:-

इस नगरी तों मन आज़ाद रखो, स्थान अपना जे पावणा।
साडे इष्ट देव श्री रामचन्द्र नाल मेल तुसां खावणा।।

स्पष्ट है सजनों कारण उपस्थित होने पर भी मन को संसार की ओर प्रवृत्त न होने देना अथवा सदैव निज परमात्म स्वरूप में लीन रखना ही वास्तविक अर्थ में मौन साधने का प्रतीक है। यह मौन अवस्था ख़्याल के पूर्णरूपेण एकाग्रचित्त व ध्यानस्थ होने पर प्राप्त होती है और सत्य व दिव्य ऊर्जा का द्वार खोल देती है। इस तरह धीरे-धीरे मौन होने के स्वभाव में परिपक्व होने पर मन की संकल्प-विकल्प उठाने की क्षमता क्षीण हो जाती है व उसका विलग अस्तित्व समाप्त हो जाता है। इस तरह आत्मनियन्त्रण रखने वाले उस पुरुषार्थी की मानसिक शक्ति असीम रूप से बढ़ जाती है और उसे परम शांति की प्राप्ति होती है। इस असीम शांति शक्ति की प्राप्ति हेतु ही सजनों ईश्वर कहते हैं:-

सजनों मेरी सुन लौ बात, दुनियां तों राहवो आज़ाद

मौन के प्रकार

उपरोक्त विवेचना से सजनों स्पष्टता ज्ञात होता है कि मौन दो प्रकार का

होता है -

(1) वाणी का और (2) मन का।

वाणी को वश में रखना, कम बोलना, नहीं बोलना, ज़रुरत के अनुसार शब्दोच्चार करना वाणी के मौन कहे जाते हैं। मन को स्थिर करना, मन में बुरे विचार नहीं लाना, अनात्म विचारों को हटाकर आत्म (अध्यात्म) विचार करना, बाह्य सुख की इच्छा से मुक्त होकर अन्तर्सुख में मस्त होना और मन को आत्मा के वश रखना वगैरह मन का मौनव्रत कहलाता है।

मौन धारण करने वाले के लक्षण

मौन को सजनों मुनियों का व्रत माना जाता है। यहाँ मुनि का अर्थ स्पष्ट करते हुए बता दें कि मुनि वह है जो शब्द ब्रह्म विचारों का मनन करता है और अपने ईश्वरीय स्वरूप का ध्यानी, धर्म और सत्यासत्य आदि का सूक्ष्म विचारक व शांतिप्रिय होता है इसलिए इन विवेकशील मौनव्रतधारियों में महान शक्ति होती है। यही नहीं सतत मनन करने वाला वह मौनी, जगत की तरफ से उदासीन यानि अंतर्मुखी, चंचलता रहित, निर्विरोध, त्यागी व तपस्वी होता है इसलिए मननशील भक्त, महात्मा, ऋषि या सन्यासी कहलाता है। कहने का आशय है कि अंतर्ध्वनि यानि अपनी आत्मा की आवाज़ सुन कर उस पर पूरी तरह से विचार करने वाले उस सजन पुरुष के मन में संकल्प-विकल्पों का कोलाहल नहीं होता। इसलिए तो वह सहज ही किसी परिस्थिति या घटना से प्रभावित होकर अपने भावों को सहज ही किसी के आगे प्रकट नहीं करता या किसी भी बात का शीघ्र ही बिना सोचे विचारे कोई उत्तर नहीं देता अपितु अपनी वाणी पर संयम रखने वाला वह जितेन्द्रिय विषय की गोपनीयता को बरकरार रखते हुए बहुत धैर्य से अन्तर्निर्दिष्ट हुक्म के अनुसार हर कदम बहुत विचार से उठाता है और जीवन में हर कदम पर विजय प्राप्त करता है। इस प्रकार वह जल्दी से अपने मन को संसार की ओर उत्कृष्ट नहीं होने देता अपितु सदा परमात्म स्वरूप का चिंतन करते हुए उसी में अपने मन को सदा

लीन रखता है और शनैः-शनैः संकल्प रहित हो शब्दातीत अर्थात् सब शब्दों से परे हो ईश्वर-परमात्मा नाम कहाता है और विश्राम को पाता है। इसी उपलब्धि के दृष्टिगत ही सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

सजनों तुसां बालक नहीं नादान, हो तुसां हुन नौजवान।
पा लवो आत्मिक ज्ञान, पावो विश्राम सजनों पावो विश्राम

आओ सजनों अब इस मौन अवस्था को व्यावहारिक रूप से समझने हेतु सर्वप्रथम अपने मन को शांत करते हैं और मिलकर बोलते हैं:-

मन अपना सब शांत रखो ।
मस्तिष्क भी सब शांत रखो ।।
सोचने समझने की शक्ति को ।
बुद्धि बल से बलवान रखो।।
मन अपना सब शांत रखो।
मस्तिष्क भी सब शांत रखो ।।
बुद्धि निश्चय करने की शक्ति है।
भले-बुरे का ज्ञान कराती है ।।
सत्य है क्या असत्य है क्या।
विवेक द्वारा यह जनाती है ।।
मन अपना सब शांत रखो।
मस्तिष्क भी सब शांत रखो ।।
धैर्य स्थिर रखता है चित्त को।
हर कामना रुकती संतोष द्वारा।।
निर्विकार चित्त प्रसन्न है रहता।
धैर्य संतोष के गुणों द्वारा।।
मन अपना सब शांत रखो।
मस्तिष्क भी सब शांत रखो।।
आचार-विचार सत्य आधारित हैं होते।

व्यवहार में पनपती है समता।।
सच्चिदानंद का अनुभव है होता।
सुख-शांति में होती है वृद्धि।।
मन अपना सब शांत रखो।
मस्तिष्क भी सब शांत रखो।।
भाव-स्वभाव धर्म-परायण है होता।
सजन परउपकार में है जुटता।।
तभी जीव सत् कर्म है करता।
निर्भय हो है जग में विचरता।।
मन अपना सब शांत रखो।
मस्तिष्क भी सब शांत रखो।।

सबकी जानकारी हेतु मौन के विषय में इससे आगे बातचीत आगामी सप्ताह करेंगे, तब तक अपने मन को पूरी तरह समझा लेना कि अब हम सांसारिक बातचीत करने के स्थान पर काम की परमार्थी बात ही करेंगे। इस तरह मात्र शब्द ब्रह्म विचार अपना कर अपने मन को संसार की तरफ से पूरी तरह मौन कर आगामी सप्ताह शांत होकर आना।

मौन-2

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,
उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत सप्ताह सजनों हमने जाना कि मन को शुद्ध करने के लिये सजनों मानसिक तप की आवश्यकता है। मानसिक तप का प्रधान अंग मौनव्रत है। इस मौनव्रत को धारण करने से अखंड शांति की प्राप्ति होती है और व्यक्ति भूत-भविष्य की सोच से विमुक्त हो सदा वर्तमान में प्रसन्नचित्त रहते हुए विवेकशील बना रहता है। आओ अब आगे जानते हैं कि मौन और वाणी का क्या सम्बन्ध है?

इस हेतु सर्वप्रथम जानो कि वाणी और मस्तिष्क का सीधा सम्बन्ध है। मनुष्य जो भी कुछ सोचता और विचारता है, उसकी अभिव्यक्ति वाणी के माध्यम से करता है। भावनाएँ वाणी के द्वारा ही प्रगट होती हैं और अन्दरुनी उत्कृष्टता/निकृष्टता का परिचय देती हैं। कहने का आशय यह है कि काम/कामना, तृष्णा, लोभ वासना, मोह, अहंकार आदि की ज्वालायें अन्दर ही अन्दर धधकती रहती हैं और तापवश संतप्त होने पर जब-तब अवसर पाकर वाणी के माध्यम से बाहर फूट पड़ती हैं अथवा मानसिक शक्तियों को

घुन्न की तरह खाती रहती हैं। इसीलिए आत्मिक साधना में वाणी के संयम को मानसिक संयम के साथ सम्बद्धित किया गया है और कहा गया है कि विचारणा, भावना और आकांक्षा पक्ष के रूप में मानसिक शक्तियों का क्षरण रोकने के लिए मौन अनिवार्य है। स्पष्ट है सजनों यदि अभिव्यक्ति पक्ष से वाक् संचय न किया जाये तो शक्ति संचय की साधना अधूरी एवं एकांगी रह जायेगी और हम बुद्धिमान व शक्तिशाली नहीं बन पाएंगे। इसलिए मानसिक संयम के साथ-साथ वाणी का संयम भी अनिवार्य रूप से आवश्यक है। मौन साधना इसी की पूर्ति करती है। इस विषय में सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कहता है:-

इन्सानां विच वसदी मेरी तस्वीर।
ओ सब नूं करे दिलगीर, मेरी तस्वीर।
मुश्किल टोले जो बहुतेरा किसे नाल न बोले, कोई विरला लभ्भे वीर।

इस संदर्भ में सजनों वाणी का संयम 'वाक्-ब्रह्मचर्य' कहलाता है व इस वाक्-ब्रह्मचर्य को धारण करने वाला वीर कहलाता है। जिस प्रकार वीर्य के अपव्यय से रोग, जरा और अकाल मृत्यु की गोद में जाना पड़ता है, वैसे ही वाणी का दुरुपयोग अपव्यय करने पर या फिर निरन्तर बोलते रहने से वाणी की प्रभाव क्षमता क्षीण होती है और मानसिक शक्तियों की न्यूनता होती जाती है। अतः मित-भाषण को मौन सम ही माना जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में जो भाषण स्वार्थ भाव से रहित हो, किसी के लाभ, हित या कल्याण के उद्देश्य से सत्यता अनुरूप किया जाता है, वह मौन है। इसलिए सार्थक व उतना ही बोलना चाहिये जितना बोलना आवश्यक है। शेष समय में चुप रहना चाहिये। अध्यात्म क्षेत्र में वाक्-सिद्धि का प्रयोजन मौनव्रत का अभ्यास करने से सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार वाणी मौन के अभ्यास से प्रखर होती है तथा प्रभावोत्पादक बनती है और इंसान आत्मोन्मुख होकर आत्मदर्शन कर पाता है। ऐसे सजन के विषय में शास्त्र कहता है:-

ओहदा किसे नाल नहीं बाहवन खड़ोवन,
ओहदी किसे नाल नहीं दोस्ती।
ओन्हुं लगन लगी है राम रटन दी,
जेहड़ा पहचान लवे अपनी रौशनी।।

मौन धारणा से लाभ

मौन प्रकृति का शाश्वत नियम है। प्रकृति में सदैव मौन का साम्राज्य रहता है। चाँद, सूरज, तारे, कुदरत, सब बिना कुछ कहे-सुने चल रहे हैं। संसार का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य मौन के साथ ही पूर्ण हो रहा है। इसी तरह मनुष्य भी जीवन में कोई महान कार्य करना चाहे तो उसे एक लम्बे समय तक मौन का अवलम्बन लेना पड़ेगा क्योंकि मौन से ही शक्ति का संग्रह और उसकी वृद्धि होती है।

मौन में महान शक्ति है यानि मौन की क्षमता वस्तुतः असीम है। ऐसा इसलिए क्योंकि सतत् रूप से शक्तियों का निरर्थक व्यय रोकने हेतु मौन का अभ्यास करने से चित्त-वृत्तियों को बिखरने से बचाया जा सकता है और ध्यान, एकाग्रता के बल पर अन्तर्मन की गहराई में प्रविष्ट कर, स्थायी आनन्द व शान्ति के स्त्रोत तक पहुँचा जा सकता है। इस तरह यह आन्तरिक शक्तियों की अभिवृद्धि एवं अभिव्यक्ति का श्रेष्ठ साधन है। इसमें असीम एवं प्रबल सामर्थ्य है क्योंकि यह आन्तरिक ऊर्जा के क्षरण को रोकता है।

मौन से मन की शक्ति बढ़ती है। मन को शान्त करने के लिये मौन से अच्छा कोई दूसरा रास्ता नहीं है। इस प्रकार शांत मन में जागरुकता/सचेतनता के साथ-साथ सकारात्मक विचारों का विकास होता है। सकारात्मक विचार आन्तरिक मानसिक व बौद्धिक शक्ति को मजबूत कर उनका विकास करते हैं।

मौन से सब दोष नष्ट हो जाते हैं। शक्तिशाली मन को किसी भी प्रकार का भय, कामना, क्रोध, चिन्ता, लोभ, मोह और व्यग्रता आदि नहीं रहती। इस

प्रकार मौन का अभ्यास करने से सभी प्रकार के मानसिक विकार समाप्त होते जाते हैं और किसी प्रकार का कोई कलह-क्लेश नहीं रहता।

मौन से ही आत्म-साधना सम्पन्न होती है। जब हम कुछ समय मौन रहते हैं तो जगत की तरफ से मुख फेर स्वयं से बात करते हैं। इस तरह उस समय आत्म-मूल्यांकन करते हैं और आत्मसंयम द्वारा आत्मसुधार करने का यत्न करते हैं। इससे नवीन मानसिक ऊर्जा प्राप्त होती है और सात्विक विचारों को धारण करने की प्रेरणा मिलती है। ये विचार हमारी सोचने-समझने की शक्ति यानि बुद्धि को बढ़ाते हैं व वृत्ति-स्मृति व स्वभावों को निर्मल बनाते हैं। फलतः ख़्याल एकाग्रचित्त हो स्वयं पर केन्द्रित हो पाता है, ध्यान शक्ति बढ़ती है और परम शांति की प्राप्ति होती है।

मौन से निरोगता पनपती है। व्यर्थ का अनर्गल वार्तालाप करने के स्थान पर अधिकांश समय मौन का निरन्तर अभ्यास करते रहने से दिल-दिमाग शांत व एकरस बना रहता है। फलतः मन तनाव, अवसाद व चिंता मुक्त बना रहता है, रात में नींद अच्छी आती है, प्रसन्नचित्तता बनी रहती है और शरीर की बीमारियों से लड़ने की प्रतिरोधात्मक क्षमता बढ़ती है।

मौन के अवलम्बन से हम वाणीकृत पापों से बच जाते हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि मौन साधने पर हम किसी को अप्रिय, कठोर वचन बोलने, गाली देने, झूठ बोलने, चुगलखोरी करने, किसी की आलोचना आदि करने से बच जाते हैं। इसलिए तो कहा जाता है कि 'ब्रह्म वह है जो वाणी से नहीं कहा जा सकता। अतः निरर्थक अब्रह्म शब्दों को रोकने के लिये ही मौनव्रत का प्रावधान है'।

मौन और ध्यानः--यदि मौन के साथ ध्यान का भी प्रयोग किया जा रहा है तो व्यक्ति निर्मनी दशा अर्थात बगैर मन के जीने वाला बन सकता है। इसे ही 'मन की मौत' कहा जाता है, जो आध्यात्मिक लाभ के लिये जरूरी है।

मौन और ज्ञानः- जिस प्रकार स्थिर जल बड़ा गहरा होता है, उसी तरह मौन

भी मनुष्य के ज्ञान की गम्भीरता का प्रतीक है। मौन अन्तर का श्रृंगार है। मौन हमें अन्तर्मुखी बनाता है। इस अन्दर की आवाज को हम इसी मौन अवलम्बित ध्यान अवस्था में सुन एवं समझ सकते हैं। तभी हमें प्रकृति की दिव्य वाणी सुनाई देती है और हम उसका आनन्द उठा विश्राम को पा सकते हैं।

मौन में मोक्ष का गगन है। मौन साधना की अध्यात्म-दर्शन में बड़ी महत्ता बतायी गयी है। कहा गया है कि मौन रहने से सभी कार्य स्वयंमेव पूर्ण होते हैं। मौन अवस्था एक ऐसी स्थिति है जिसमें भगवद् सत्ता व्यष्टि सत्ता के और समीप आ जाती है। मनुष्य देव-स्वरूप होता होता, भगवद् सत्ता से एकाकार हो जाता है।

सारतः सजनों मौन सुख-शांति प्राप्त करने का महामन्त्र है। इसी से संसार का मन्थन है व हृदय स्थित वेद-शास्त्रों का अध्ययन संभव है। यही जगत-जंजाल से मुक्ति का प्रतीक है यानि यह विराम की स्थिति है जो मनुष्य को पर्याप्त बल, ऊर्जा व सकारात्मकता प्रदान करती है। अतः हर साधक को मौन का अवलम्बन लेना चाहिये ताकि समष्टि हित साधन सम्भव हो सके।

इस महत्ता के दृष्टिगत सजनों मौन को साधो। इस हेतु अपने ख़्याल को मौन में उतरने दो और **गहराने दो। ऐसा करने से ख़्याल ब्रह्म सत्ता से जुड़ता जाएगा और अपना असलियत स्वरूप नज़दीक प्रतीत होने लगेगा।** इस संदर्भ में मत भूलो जब वाणी थका देती है और मानव को और बोलना बोझ लगने लगता है, तो मौन की गहराई में उतरना ऐसे लगता है, जैसे दिन भर का थका हुआ आदमी रात को गहरी निद्रा में सोता है। अतः शब्दों व विचारों का क्रम तोड़कर इस विश्राम अवस्था का आनन्द मानने की चेष्टा करो। याद रखो शब्द व विचार तो, मन की खुराक है। अतः मन तो शब्दों का पान करने की ललक जगाएगा ही। लेकिन आप उस शब्द जाल से विमुक्त रह शून्य होने का प्रयास करो। **कहने का आशय यह है कि मन जितना शब्दों व विचारों में खोया रहता है उतना ही इंसान मनमत से जुड़ा रहता है। आप इन शब्दों व विचारों के जंजाल से अपने ख़्याल को विमुक्त रख, मनमत से आजाद हो**

जाओ। इस हेतु मौन को पकड़ो और उसका रसपान कर उसे ही आत्मसात् कर लो। इस हेतु अब ध्यान से सुनो कि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ क्या कह रहा हैः-

(सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के मुख के शब्द)

उस कमरे विच वड़ जाओ सजनों,
उत्थे शान्त ही शान्त है।
बिन सूरजों प्रकाश उस अन्दर,
नज़र आवे अपना आप है।।
हुण नज़र आवे अपना आप है,
नज़र आवे अपना आप है।
बिन सूरजों प्रकाश उस अन्दर,
नज़र आवे अपना आप है।।
उस कमरे विच रोशनी आप दी,
बिन जपयों जप जाप, रामा बिन जपयों जप जाप।
जोत जगे सब अन्दर जावे,
किरण सब दे साथ सियापति रामचन्द्र जी की जय।।
ओ३म् ओ३म् दियां आवाज़ां आवन,
जोत दा विच प्रकाश, रामा जोत दा विच प्रकाश।
साज ताज ही समझो सजनों, उसे दा प्रताप,
सियापति रामचन्द्र जी की जय।।
आदि ओ३म् अन्त ओही है, आप ही हो विराट,
रामा आप ही हो विराट।
आप हो सारे भूमण्डल में, आप दिन और रात,
सियापति रामचन्द्र जी की जय।।
निकट आप दूर वी ओही है सर्व कला भरपूर,
रामा सर्व कला भरपूर।

थित वार पलकां हो आप निकट हो नहीं दूर,
सियापति रामचन्द्र जी की जय।।
चानणा हो गये सब जग अन्दर मर्म न जाने कोय,
रामा मर्म न जाने कोय।
जोत जगे हर अन्दर आप दी,
सब जग चानणा होय सियापति रामचन्द्र जी की जय।।

सबकी जानकारी हेतु मौन के विषय में जानने के पश्चात् आगामी सप्ताह हम वाचालता यानि जरूरत से अधिक बोलना क्यों और कैसे अहितकारी है इसके विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

दिनाँक 9 दिसम्बर 2018 का सबक़

मौन-3 (वाचालता के दुष्प्रभाव)

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,
उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहो:-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों अभी तक हम समझ चुके हैं मौन व उसके महत्त्व के बारे में। साथ ही हम यह भी जान चुके हैं कि जन-सम्पर्क में होने के नाते हम बोलने की आवश्यकता को नकार भी नहीं सकते यानि बोले बिना हम नहीं रह सकते। अत: मितभाषण या कम बोलने को भी मौन की एक अनिवार्य साधना के रूप में स्वीकारा गया है यानि मौन से तात्पर्य अनावश्यक न बोलने व यदि बोलना पड़े तो अत्यन्त धीमे स्वर में मधुर व सत्य वचन कहने से है। इस संदर्भ में सब अपनी जाँचना करो कि क्या आप मधुर व सत्य वचन बोलते हो या फिर अपनी बातचीत द्वारा झूठ और छल का चक्रव्यूह बुनते हो यानि सत्य को भी झूठ साबित करने की कोशिश करते हो?

जी हम मधुर व सत्य वचन बोलते हैं।

तो जानो कि यह मध्यम मार्ग सजनों अच्छा है। इससे व्यवहार भी नहीं टूटता

और शक्ति का अनावश्यक व्यय भी नहीं होता अपितु इससे तो शक्ति संचित होती है। आओ सजनों अब ऊर्जा के इसी अपव्यय को रोकने तथा उसे संग्रहित करने में कैसे मौन एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है, इसे वैज्ञानिक तरीके से समझते हैं:-

इस संदर्भ में सजनों सर्वप्रथम हमें यह बताओ कि एक सार्वजनिक भाषण कर्त्ता तथा अपनी माँस-पेशियों से कड़ी मेहनत करने वाले श्रमिक (मजदूर), दोनों की तुलना में कौन अपनी नाड़ी-तन्त्रीय ऊर्जा का अधिक व्यय करता है?

मौन।

जानो एक सार्वजनिक भाषण कर्त्ता को अपनी माँस-पेशियों से कड़ी मेहनत करने वाले एक श्रमिक की अपेक्षा अधिक नाड़ी-तन्त्रीय ऊर्जा का व्यय करना पड़ता है। उसका कारण यह है कि नाड़ी-तन्त्रीय ऊर्जा का व्यय, कार्य करने के लिये प्रयुक्त माँस-पेशियों के परिमाण पर आधारित न होकर, क्रिया-इकाई (मोटर-यूनिट) की संख्या के अनुपात में होता है। अतः जितना स्नायविक बल एक बड़ी माँस-पेशी वाले अवयव (जैसे पैर) को संचालित करने में लगता है, उतना या उससे भी अधिक बल एक छोटी माँसपेशी वाले अवयव (जैसे चेहरे) को संकुचित-विकुचित करने में लग सकता है। इस प्रकार एक वक्ता जो अपने स्वर की अनेक छोटी-छोटी माँस-पेशियों का उपयोग करता है, वह एक श्रमिक की तुलना में बहुत अधिक ऊर्जा व्यय करता है या एक स्टेनो-टाईपिस्ट, लुहार की अपेक्षा अधिक ऊर्जा खर्च करता है। इस दृष्टि से ऊर्जा के अपव्यय को रोकने तथा उसे संग्रहित करने में मौन एक बहुत ही मूल्यवान माध्यम है।

कहने का आशय यह है कि जितना अधिक कोई इंसान बोलता है उतनी ही अधिक वह अपनी अंतर्निहित ऊर्जा का अपव्यय करता है। आमतौर पर आजकल का इंसान तो जितना व्यर्थ बोलकर अपनी इस अंतर्निहित ऊर्जा का

अपव्यय करता है उतनी तो खुराक भी नहीं खाता। परिणामतः शरीर व मन दोनों ही कमज़ोर हो जाते हैं। शरीर और मन से हारा हुआ वह इंसान अपने लिए व सबके लिए बहुत खतरनाक साबित होता है क्योंकि अपनी अतृप्त क्षुद्धा मिटाने हेतु वह फिर हर तरफ से नकारात्मकता यानि बुराई को ही ग्रहण करता है। बुरा ग्रहण करता है तो मन-मस्तिष्क कैसे मौन रह सकता है वह भी फिर बुरा सोचते हुए बुरा ही बोलता है व बुरा ही करने के लिए प्रेरित करता है। नतीजा उस बुरी करनी का बुरा फल मिलने पर तड़फ उठता है और क्रोधाग्नि में जलता हुआ सब कुछ यहाँ तक कि अपने मन व पारिवारिक शांति तक भंग कर देता है। निश्चित ही वह स्थिति किसी भूकम्प से कम नहीं होती जो सारे वातावरण को तहस-नहस कर देती है जिसके दुष्प्रभाव से परिवार के किसी भी सदस्य के लिए एकता व एक अवस्था में एकरस बने रहना दुष्कर हो जाता है। इस तरह मूर्ख इंसान वाणी व मानसिक मौन न धार पाने के कारण अपना व अपनों का अनमोल जीवन बरबाद कर देने जैसा घिनौना पाप कर बैठता है।

इसी बात को अब दूसरे उदाहरण से समझो। इस विषय में हम आपसे पूछते हैं कि क्या आप जानते हो कि जब आप बोलते हो तो क्या होता है?

मौन।

जानो आपके मस्तिष्क में जो चिन्तन निर्मित होता है उसे वाणी द्वारा व्यक्त करने के लिये पहले उसे व्याकरण और भाषा के नियमानुसार वाक्य में परिवर्तित किया जाता है।

उसके बाद उसे स्वर यन्त्र की माँस-पेशियों की सक्रियता द्वारा ध्वनि के रूप में परिणत किया जाता है।

इस कार्य के लिये स्वर-यन्त्र की माँस-पेशियों को आवश्यकतानुसार संकुचन-विकुचन करने में सही-सही निर्देश दिये जाते हैं और ध्वनि-तरंगों को प्रसारित करने के लिये आवश्यक हवा की मात्रा का नियन्त्रण किया जाता है।

इसके अतिरिक्त जिह्वा, होंठ और चेहरे की माँस-पेशियों को भी सामान्य निर्देश दिये जाते हैं।

इन सब क्रियाओं के लिये अनेक छोटी-छोटी माँस-पेशियों को काम में लिया जाता है और इन माँस-पेशियों को सक्रिय करने के लिये हजारों की सँख्या में क्रियावाही नाड़ियों के माध्यम से विद्युत आवेग का उपयोग होता है, जिसके लिये एक निश्चित मात्रा में ऊर्जा का प्रयोग किया जाता है।

इस तरह यदि एक व्यक्ति को कुछ घण्टों तक भाषण देना पड़ता है तो सम्भवतः उसे इतनी अधिक ऊर्जा व्यय करनी पड़ती है कि वह व्यक्ति अत्याधिक थक जाता है।

निष्कर्षतः ज्ञात होता है कि मौन साधना से व्यक्ति बहुत बड़े ऊर्जा-व्यय से बच सकता है और अपनी अंतर्निहित शक्तियों का सकारात्मक प्रयोग करने में कुशल बन सकता है ।

मौन की इस व्यावहारिक महत्ता के दृष्टिगत सजनों केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है कि हम व्यक्त रूप में बोलना बन्द करें। वास्तविक मौन का अर्थ तो यह है कि हम मानसिक रूप से भी बोलने की प्रक्रिया को बन्द करें क्योंकि जहाँ तक स्नायविक ऊर्जा-व्यय का सम्बन्ध है, इसमें और व्यक्त वाणी में समान व्यय ही होता है। ऐसा इसलिए होता है कि मानसिक रूप से बोलने में केवल स्वर-यन्त्र को छोड़कर उन सभी क्रियावाही (मोटर-युनिटों) का उपयोग होता है, जिनका उपयोग व्यक्त वाणी में होता है। इसलिए व्यक्त-वाणी के संयम के साथ मानसिक वाणी के संयम का प्रयोग भी आवश्यक है, जो स्वर-यन्त्र के शिथिलीकरण से ही संभव है। इसके अतिरिक्त इस संदर्भ में यह भी समझना आवश्यक है कि जिस तरह मुख द्वारा कुछ व्यक्त करने पर कोई दूसरा उसे सुनता है उसी तरह मानसिक रूप में भी जब हमारा ख़्याल किसी के प्रति कुछ उचित-अनुचित बोलता रहता है तो उसे भी कोई सुनता है। वह कोई दूसरा नहीं अपितु ईश्वर अपना आप होता है। इस सत्य को स्वीकार

कर हमें अविलम्ब अपनी मानसिकता के चलन को ठीक करना है और इस हेतु पूर्ण रूपेण मानसिक रूप से व्यर्थ बोलने की प्रक्रिया को बन्द करना है। याद रखो जो पुरुषार्थ दिखा पाता है वह अपनी ऊर्जा का प्रयोग अपने जीवन लक्ष्य को सिद्ध करने में लगा पाता है क्योंकि उसका मन-चित्त, बुद्धि व वृत्तियाँ शांत हो निर्मल हो जाती हैं। फलतः विवेकशक्ति क्रियाशील हो जाती है और उसका हर फैसला सुखदायक होता है। इस तरह वह आत्मविश्वासी पराश्रित होने के स्थान पर स्वावलंबी बन जाता है और अपने जीवन को सर्वहित के निमित्त कुर्बान कर यश-कीर्ति प्राप्त करता है।

सजनों मौन को वैज्ञानिक तरीके से समझने के पश्चात् आओ अब वाचालता अर्थात् अधिक बोलने के नुकसानों से भी परिचित हो लेते हैं ताकि जो भूलें नादानी वश इस वाचालता के स्वभाव को अपनाने के कारण हम अभी तक करते आए हैं उनसे बच सकें।

जानो वाचाल वह होता है जो व्यर्थ, उद्दंडतापूर्वक या बहुत बढ़-बढ़कर बातें करता है व तेज बोलता है। इस परिप्रेक्ष्य में यद्यपि हम मानते हैं कि बोलना हमारे सामाजिक होने की निशानी है तथापि अपने बोल से ही हम जाने जाते हैं, यानि अच्छा बोलने पर हम विख्यात व बुरा बोलने पर हम कुख्यात भी हो सकते हैं। सरल भाषा में कहें तो आशय यह है कि इन्सान को बोलना सीखने में तीन साल लग जाते हैं, लेकिन क्या बोलना है व कैसे बोलना है, वह सीखने में पूरी ज़िन्दगी लग जाती है। ऐसा माता-पिता की परवरिश के दौरान रही कमी के कारण होता है। जो माता-पिता अपने व्यावहारिक आचरण द्वारा बच्चों के सामने सही तरीके से सजनता अनुरूप मितभाषी, स्पष्ट व सत्यवादी होने का आदर्श रखते हैं उनका बच्चा यथा समय ही कहाँ, कैसे और कितना बोलना है, वह शिष्टाचार सीख जाता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए ही सजनों हमारे वेद-शास्त्रों में सम्यक् वाक् को अपनाने की महत्ता पर बल दिया गया है अर्थात न ज्यादा बोलें और न कम अपितु उतना ही बोलें जितने से जीवन चलता है। जान लें कि व्यर्थ बोलते रहने का

कोई मतलब नहीं होता। इसी तरह निरर्थक भाषण या उपदेश देने से भी कोई लाभ नहीं होता। इससे तो श्रेष्ठ होता है कि हम बोधपूर्ण जीवन जियें, ऐसा धर्म भी कहता है।

यहाँ यह भी मत भूलो कि जहाँ वाक् का सकारात्मक पक्ष यह है कि इस जग में वाक्-द्वारा ही सब कुछ चलता है वहीं इसका नकारात्मक पक्ष भी है, वह यह है कि मनुष्य को वाक् क्षमता मिली है तो वह उसका दुरुपयोग भी करता है यानि कड़वे वचन कहता है, झूठ बोलता है, व्यर्थ बोलता है या निंदा-चुगली के रूप में ऐसी नकारात्मक बातें कहता है जिससे कि भ्रमपूर्ण स्थिति का निर्माण होता है और घर, परिवार, देश, समाज, संस्थान और धर्म की प्रतिष्ठा गिरती है। इस प्रकार मनुष्य की यान्त्रिकता चार बातों में प्रगट होती है यथा झूठ बोलना, कल्पना करना, नकारात्मक भावों को व्यक्त करना और व्यर्थ बोलना। इन्हीं तमाम कारणों से आज के युग में संयमपूर्ण भली-भांति सोच-विचार कर कहे गये वचनों का अभाव हो गया है और मानव एक दूसरे को व्यर्थ ही परेशान कर रहा है। अतः आज बहुत आवश्यकता है इस बात की कि व्यक्ति बोलने से पूर्व विचार करे कि इसके कितने दुष्परिणाम होंगे या इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव दूसरे पर क्या पड़ेगा। इस तरह कदम-कदम पर विचार पकड़ते हुए व उसी के साथ प्यार रखते हुए वह वाक्-संयम अपनाए। अनर्थक बहस, तर्क-वितर्क व वाद-विवाद में न उलझे क्योंकि इनका कहीं कोई अन्त नहीं। इनसे तो व्यर्थ ही वैर-विरोध व उत्तेजना बढ़ती है और शक्ति क्षीण होती है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना मत, विचार, भाव और विश्वास होता है। दूसरे के मत को बदलना बहुत कठिन है। अतः जब तक आपके विचार सुदृढ़ न हो जाएँ तब तक दूसरे से वाद-विवाद कदाचित् न करें। इस संदर्भ में शास्त्र भी कहता है किः-

वाद विवाद किसे नाल न कीजे, जिह्वा राम नाम रस पीजे

अर्थात् शास्त्र के वचनों अनुसार हम सबको चाहिये कि व्यर्थ का बोलना बन्द करें क्योंकि व्यर्थ बोलने से बहुत वाक् शक्ति का अपव्यय होता है। वाक्

इन्द्रिय मन को बुरी तरह अपकृष्ट यानि पतित करती है। इसी तरह मिली-जुली अनेक प्रकार की बातचीत करना भी बहुत बुरा स्वभाव होता है। इससे मन अपकृष्ट रहता है। यह मन को बहिर्मुख बनाता है और मनुष्य आध्यात्मिकता से हट स्वार्थपरता अपना बैठता है। अतः मौन वृत्ति अपनाना अनिवार्य है। इस विषय में शास्त्र भी कह रहा है:-

बात किसे दी न करियो, न करियो किसे दी गल
सत्संग में मत बोलियो, न मचाइयो हलचल

इस हेतु उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते-जागते, जिह्वा से बराबर भगवान का नाम सिमरण करते रहें। इस तरह अपने हिस्से के सब काम करें, पर काम भर को बोलें क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

मौन व्रत धार के आना वे सजनों
सजनों वे महाराज जी दे वचन करो प्रवान
खावो पीवो टुरो फिरो, चलांदे राहवो सजनों वे नाम वे

याद रखें व्यर्थ बोलना बन्द कर देने से झूठ छूटता है, पर-निन्दा छूटती है, व्यर्थ की चर्चा छूटती है, किसी से वैर नहीं होता, किसी से क्षमा नहीं मांगनी पड़ती, बोलने के बाद पछताना नहीं पड़ता, समय का दुरुपयोग नहीं होता, किसी कार्य का बन्धन नहीं रहता, अपने वास्तविक ज्ञान स्वरूप की रक्षा होती है, अज्ञान मिटता है, अन्तःकरण की शान्ति भंग नहीं होती व भगवन्नाम को जपने का पूरा अवसर मिलता है। इस प्रकार सोच-विचार कर, समझकर सर्वहित के पक्ष में बोलने से कई तरह के संकटों से बचा जा सकता है और घर-परिवार व समाज में अच्छा माहौल निर्मित किया जा सकता है। इसके विपरीत व्यर्थ की बातें या बेवजह बातें करने से विवादों का जन्म होता है और आगे चलकर वही विवाद कष्टों का कारण बनते हैं और कई समस्याओं को जन्म देते हैं। अतः जहाँ जितना जरूरी हो, वहाँ उतनी ही बात करनी चाहिये। सजनों इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि मौनवृत्ति धारण कर ही हम

समभाव समदृष्टि की युक्ति अनुसार परस्पर सजनता का व्यवहार करते हुए सहजता से अपना घर सतयुग बना सकते हैं।

स्पष्ट है सजनों कि परमात्म तत्त्व का विचारक व्यर्थ का बोलने, सुनने एवं देखने में रुचि नहीं रखता क्योंकि व्यर्थ का बोलने से प्राण-शक्ति, मनःशक्ति तथा एकाग्रता की शक्ति क्षीण होती है। इस तरह वह वाणी का अपव्यय नहीं करता और मात्र अभिप्राय युक्त वचन ही बोलता है। यही नहीं बोलने से पहले वह अपने शब्दों का चयन करने के प्रति भी सतर्क रहता है और यह विचार कर बोलता है कि उसके शब्द दूसरे के मन पर क्या प्रभाव डालेंगे। चूंकि वह जानता है कि मन का अनुमान सदा बात को बढ़ाया करता है। अतः वह इस अत्युक्ति से यानि बातों को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर वर्णन करने की रीति से सदा बचता है और इस हेतु सदा नाप तौल के शब्द बोलता है।

स्पष्ट है सजनों कि वाक् इन्द्रिय मन-चित्त को बहुत चलायमान करती है। अतः इसके प्रयोग के प्रति सदा सावधान रहें और इस प्रकार अपनी जिह्वा सदा स्वतन्त्र रखें क्योंकि शास्त्र भी कह रहा हैः-

हो हो हो सजनों जिह्वा दा कड्डो वल,
हो हो हो मुश्किल हो जाये तुहाडी हल।
जेहड़ी बीत गई, जेहड़ी आने वाली सारी तुहाडी जायेगी टल,
सारी तुहाडी जायेगी टल।।
हो हो हो हनुमान जी दे वचनां दी पालना करो,
हो हो हो उन्हां दी बात फड़ो, पकड़ो इक इक गल।

निःसंदेह आरम्भ में ऐसा करने में यानि मन-वचन से मौन अपनाने में आपको कठिनाई मालूम होगी क्योंकि वृत्तियों का तीव्र आक्रमण होगा यानि वह आपको सहजता से मौन के स्वभाव में नहीं ढलने देंगी। अनेक प्रकार के विचार उठेंगे जो मौन वृत्ति को भंग करने की कोशिश करेंगे। पर आपको खुद को सँवारने, सुधारने व सुन्दर बन महान बनाने हेतु ताकतवर होकर आगे

बढ़ना होगा और इन सबको मन की व्यर्थ कल्पना व भुलावा मानकर व सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के वचन प्रवान कर मौन वृत्ति धारे रखने वाला साहसी पुरुष बनना होगा। इस कार्य में पूर्णता सफल होने हेतु प्रणव के अजपा जाप द्वारा अपनी सारी शक्तियाँ ईश्वर में केन्द्रित करना और मन को पूर्ण रूप से शब्द ब्रह्म विचार के ग्रहण में लगाए रखना। ऐसा करने से व्यर्थ की बात करने की इच्छा जाती रहेगी, शांति मिलेगी और समुचित वातावरण भी सकारात्मक बनेगा। अतः किंचित् मात्र भी घबराना नहीं अपितु वीर योद्धा की तरह विजय पथ पर इस विश्वास के साथ आगे बढ़ना कि ईश्वर आपके साथ है। याद रखना यदि आपका विश्वास अटल रहा तो सुनिश्चित रूप से आप विजयी घोषित होंगें।

सजनों जानो कि ऐसा पराक्रम दिखाने पर ही 'साडा है सजन राम, राम है कुल जहान' अर्थात् 'ईश्वर हमारा मित्र, प्रियतम सर्वव्यापक है, उसी को जानो मानो व वैसे ही गुण अपनाओ' के सिद्धान्त पर सुदृढ़ता से बने रह परमात्मा नाम कहाओगे। अतः अभी से सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित निम्नलिखित वचनों की पालना करना आरम्भ कर देना:-

साजन जी जिह्वा कर जावे उन्हां दी चुप
फिर ख़्याल न राहवे सोचां विच

सजनों यही एकमात्र सरलतम युक्ति है अपने आप पर विजय पाने की। अतः इस मौन वृत्ति को युक्तिसंगत धारण करने का पुरुषार्थ दिखाओ और विश्राम को पा अपना जीवन सफल बनाओ।

सबकी जानकारी हेतु आगामी सप्ताह हमने अब तक जो भी पढ़ा है, उस विषय में अपना आत्मनिरीक्षण करेंगे।

दिनाँक 16 दिसम्बर 2018 का सबक़

आत्मनिरीक्षण

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,
उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों अनमोल मानव जीवन प्राप्त कर, इसी जीवनकाल में अपने जन्म की बाज़ी जीतने हेतु सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें क्या कह रहा है, ध्यान से सुनोः-

सजनों जाग-जाग पए सौंदे हो ।
एहो जन्म अमोलक मिलया ते इस जन्म नूं क्यों पये खोंदे हो ।
इस जन्म नूं क्यों पये खोंदे हो, क्यों पये खोंदे हो।।
पहले जागिया फिर सौणा, इस जन्म नूं सजनों वृथा खोणा।।
फिर अपने जन्म दा वैरी होणा, सजनों अपने जन्म दा वैरी होणा ।।

इसलिए मानो कि :-

सजन सजन दा है ओ गहणा, सजन है ओ सिंगार।
सजन है जे आत्मा में परमात्मा, है ओ सिरजनहार है ओ सिरजनहार।।

इस उत्तम कार्य की सिद्धि हेतु सजनों आत्मनिरीक्षण करने की महत्ता को समझना अनिवार्य है। अतः हम सभी के लिए बनता है कि समभाव-समदृष्टि की युक्ति का अनुशीलन करते हुए सजन भाव को वर्त-वर्ताव में लाने में अब और विलम्ब न करें। इस हेतु जो भी अभी तक हमें विभिन्न सबकों के माध्यम से बताया गया है, उस विषय में सत्यता से अपनी प्रगति का आकलन करते हुए आत्मनियन्त्रण द्वारा आत्मसुधार करने का भरसक यत्न करें। कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रयास द्वारा उन कलियुगी बुरे मनोभावों को जो हमारी वृत्ति-स्मृति व बुद्धि को भ्रमित कर, विकृत करते हैं, उन्हें खोज निकालें व ब्रह्म विचारों को ग्रहण कर, सत्य युक्त भाव-स्वभाव अपनाने के प्रति दृढ़ संकल्पी हो आत्मसुधार करने के लिए तत्पर हो जाएं। सजनों गदे का यज्ञ इस कार्य को समयानुसार सम्पन्न करने का सुनहरी अवसर है। अतः आए मौके को हाथ से न गंवाएँ और इस वर्ष नवीन पोशाक पहन खुद चमकें व अन्यों को चमकाएं। इस उत्तम उपलब्धि के दृष्टिगत सजनों आओ अब अपना-अपना आत्मनिरीक्षण करते हैंः-

1. क्या अब तक पढ़ाए सबक़ों को जानने-समझने के उपरांत आपके दिल में, अमरता की प्रतीति कर परमानन्द प्राप्त करने हेतु प्रबल रुचि उत्पन्न हुई है और आप उस रुचि अनुरूप सार्थक दिशा में युक्तिसंगत भरसक प्रयास करने में सफल हो पा रहे हो?

2. क्या आप अहंता-ममता छोड़कर यानि इस शरीर, इन्द्रियों, मन व बुद्धि से ऊपर उठकर, अपने वास्तविक आत्म स्वरूप की पहचान करने हेतु अनवरत सजन श्री शहनशाह हनुमान जी द्वारा प्रदत्त नाम युक्ति प्रवान कर पा रहे हो?

3. क्या आप सशक्त शब्द ब्रह्म विचार पकड़ आशा-तृष्णा के नाश द्वारा अपने मन को उपशम कर, इन्द्रियनिग्रही बनने के यत्न में सफल हो रहे हो?

4. क्या आप स्वार्थपरता यानि समस्त इच्छाओं/वासनाओं के भाव से मुक्त हो, कामनामुक्त अवस्था में स्थिरता से बने रह हर कर्म निष्काम-भाव से करने का

साहस जुटा पा रहे हो अर्थात् परमार्थ के रास्ते पर निर्भयता से बने रहने में समर्थ हो पा रहे हो?

5. कहीं यह फुरने की सृष्टि अपने मायावी प्रभाव से, आपके ध्यान को अस्थिर कर, ख़्याल को इधर-उधर भटका व मिथ्यावादी बना आपके मन में संकल्प-विकल्प की तरंगें उठने का कारण तो नहीं बनती?

6. कहीं आप अपने शरीर को ही वास्तविक स्वरूप मानकर अपना सम्बन्ध नश्वरता के साथ जोड़, भोग और संग्रह की वृत्ति में फँस तो नहीं गए यानि राग-द्वेष, वैर-विरोध, मान-अपमान, तेरी-मेरी आदि का शिकार हो, निज मानव धर्म से च्युत तो नहीं हो गए?

7. क्या अब आपने 'ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा' इस सत्य को धारण कर एक विवेकशील बुद्धिमान इन्सान की तरह भ्रमरहित यथार्थतापूर्ण जीवन जीना आरम्भ कर दिया है?

8. क्या आप अपने हृदय को प्रकाशित कर, अपना वास्तविक ब्रह्म स्वरूप जानने हेतु प्रणव अर्थात् शब्द ब्रह्म/मूलमंत्र आद् अक्षर को अपना गुरु मान, अपनी सुरत को ध्यान से अजपा जाप द्वारा उस अनवरत गुंजायमान नित्य शब्द ब्रह्म के साथ जोड़ने में कामयाब हो पा रहे हो?

9. क्या आप अपने ख़्याल को हर तरफ से समेटकर यानि एकाग्रचित्त करके, अफुर अवस्था में आ, अपनी सर्वव्याप्त महान ब्रह्म सत्ता को ग्रहण करने का भरसक प्रयास कर पा रहे हो यानि जो संदेश उस अजपा ध्वनि के माध्यम से प्रसारित हो रहा है उसे धारण कर हृदय विदित आध्यात्मिक ज्ञान को प्राप्त कर परिपूर्ण सचेतन अवस्था को प्राप्त हो पा रहे हो?

10. क्या आप परमेश्वर के सत्यनिष्ठ व कर्त्तव्यपरायण सुपुत्र कहलाने हेतु, मनमत अनुसार अपनाए आत्मीयता के प्रतिकूल आचार-विचार व व्यवहार का चलन त्याग कर, इस जगत में उसका प्रतिरूप बनकर सब कुछ परमेश्वर के

हुक्म अनुसार उन्हीं के निमित्त समर्पित भाव से करने में सक्षम हो पा रहे हो?

11. क्या आप अपनी जिह्वा से सबको सजन बुलाते हुए व परस्पर जी जी का वर्ताव करते हुए उसे स्वतन्त्र रख पा रहे हो?

12. क्या आप काम, क्रोध, लोभ, मोह के कुसंग से बचे रह, अपने संकल्प को स्वच्छ व सजन बना पा रहे हो यानि कदम-कदम पर अपने शारीरिक स्वभावों को विचार से पकड़ते हुए, संकल्प रहित अवस्था को धारने के प्रति जाग्रत हो पा रहे हो?

13. क्या आप सबको समभाव समदृष्टि की युक्ति अनुसार सजन दृष्टि से देखते हुए, एक निगाह एक दृष्टि हो, एक परिपूर्ण इंसान की तरह आपस में सजनता अनुरूप ही वर्त-वर्ताओ कर एक ख़्याल हो पा रहे हो ?

14. क्या आप समभाव-समदृष्टि की युक्ति के सबक़ अनुसार सबको एक समान समझते व देखते हुए परस्पर बिना किसी भेद भाव व राग-द्वेष के सजन भाव का व्यवहार करने में सक्षम हो पा रहे हो? आशय यह है कि क्या आप अपनी दोनों वृत्तियों यथा बैहरूनी व अन्दरूनी वृत्ति की निर्मलता बनाए रखते हुए, अपनी सुरत को कंचन रख पा रहे हो?

15. क्या आप कलुकाल के स्वभाव छोड़ सतवस्तु की चाल अपनाने हेतु यानि इस बदन से खोट निकाल, खालस सोना होने हेतु, सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ का नियमानुसार ध्यानपूर्वक व गंभीरता से अध्ययन करते हो व तदुपरांत, उसमें लिखित तथ्यों, विचारों का एकांत मन से, मनन एवं चिंतन कर उनका एकाग्रचित्तता से अनुसरण करते हो?

16. क्या आप अच्छा इन्सान बनने हेतु सच्चेपातशाह जी द्वारा बताई युक्ति अनुसार सही तरीके से प्रतिदिन आत्मविश्लेषण की क्रिया को करते हो? यानि दिनचर्या के दौरान यदा-कदा व रात्रि में सोने से पूर्व कुछ मिनटों के लिए स्थिर होकर देखने का प्रयास करते हो कि आपके अंतःकरण पर क्या

घट रहा है, आप क्या कर रहे हो, क्या सोच रहे हो। इस तरह इसका विश्लेषण करते हुए क्या आप हर समय अपने ख़्याल, वाणी व कर्म पर निगाहबानी रखते हुए अन्दर व बाहर के समुचित वातावरण सकारात्मक बनाए रखते हो?

17. कहीं आपकी परमार्थी उन्नति में संसारी बातों का कनरस या किसी देखी, सुनी अथवा बीती हुई बात की स्मृति तो नहीं बाधक बन रही?

18. कहीं आप असंतोष के भाव से ग्रस्त हो किसी बात की चिन्ता, अपेक्षा, परवाह या शिकायत तो नहीं करते?

19. क्या आप जीवन की हर परिस्थिति में चंचलता या उतावलेपन के भाव से रहित होकर सदा धैर्ययुक्त यानि सहनशील बने रह अपने चित्त की स्थिरता बनाये रख पाते हैं?

20. क्या सत्-वादी बन आपने अपने शरीर रूपी मकान को सचखंड व घर को सतयुग बना लिया है?

21. क्या आप अपने ख़्याल को ध्यान वल व ध्यान को आत्मप्रकाश की तरफ कर आत्मा में जो है परमात्मा उसका दिव्य दर्शन करने में सफल हो पा रहे हो?

22. क्या आप युक्तिसंगत अपने ख़्याल व ध्यान को स्थिर कर, अंतः व बाह्य दृष्टि द्वारा 'जेहड़ा प्रकाश है मन मन्दिर, ओही प्रकाश है जग अन्दर' की प्रतीति कर अपने हृदय को एकरस प्रकाशमय अवस्था में साधे रखने के यत्न में कामयाब हो पा रहे हो?

23. क्या आप परमेश्वर के वचनानुसार विचार शब्द को पकड़ कर, स्वभावों में स्थिर हो, सर्गुण में परिपक्क रह पा रहे हो यानि कष्ट-कलेश दुःख-सुख में स्थिर रहते हुए अपने फर्ज़ अदा को सच्चाई धर्म से निभा रहे हो?

24. क्या आप 'सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ' के अनुसार एकात्मता व आत्मीयता की भावना से ओतप्रोत होकर प्रत्येक प्राणी की सेवा हँसकर व श्रद्धापूर्वक, निष्काम भाव से करने में सक्षम हो पा रहे हो और ए विध् लघुता से प्रभुता की ओर बढ़ पा रहे हो?

25. क्या आप मौन वृत्ति को धारण कर अखंड मनः शांति का अनुभव कर विश्राम अवस्था में स्थित हो पा रहे हो?

यह था सजनों आत्मनिरीक्षण। इस आत्मनिरीक्षण के दौरान सजनों हम देख रहे थे कि जब विभिन्न बिन्दुओं पर विचार करने के लिए कहा गया तो विभिन्न स्वभावों वाले इंसान उसके संदर्भ में अलग-अलग क्रिया कर रहे थे। एक किस्म के इंसान वह थे जो आत्मनिरीक्षण के दौरान बताए गए प्रत्येक बिन्दु के संदर्भ में अपना उत्तर 'हाँ जी' व 'ना जी' के रूप में ले, पाई कमियों को दूर करने हेतु, पूरी दिलचस्पी में आकर यह क्रिया कर रहे थे। इस तरह वे अपनी उन्नति के प्रति जागरुक थे। दूसरे किस्म के इंसान वह थे जिन्हें जब प्रत्येक बिन्दु के संदर्भ में अपना उत्तर नकारात्मक प्राप्त हो रहा था तो हतोत्साहित हो सोच में जा रहे थे तथा तीसरी किस्म के इंसान वह थे जो केवल सुन रहे थे यानि कोई क्रिया नहीं कर रहे थे और आत्मोन्नति के प्रति अचेतन थे।

इस परिप्रेक्ष्य में सजनों जानो कि प्रथम श्रेणी के इंसान उत्तम, द्वितीय श्रेणी के इंसान मध्यम व तृतीय श्रेणी के इंसान मंद अधम कहलाते हैं। स्पष्ट है जो समझदार इंसान होता है वह आत्मनिरीक्षण के दौरान स्वाभाविक तौर पर अपना गहनता से जायज़ा लेता है यानि निश्चित रूप से अपना नतीजा आप ले, स्वयं में पाई गई कमियों को दूर करने का दृढ़ निश्चय लेता है और इस तरह आत्मसुधार कर मानवीय गुणों से अपने आप को अलंकृत कर लेता है। यह अपने आप में बुरे से अच्छा इंसान यानि सजन पुरुष बनने की बात होती है। आपको भी सजनों ऐसा ही बनना है।

ऐसा बनने हेतु सजनों अपनी कमियों को समूलतः इस गदे के यज्ञ के दौरान

समाप्त करने हेतु सूक्ष्मतः अपने मन पर पड़ी हुई यानि जमी हुई विकारों/दोषों की गर्द यानि धूल को साफ कर पूरी तरह से हृदय की सफ़ाई कर लेना। सरल शब्दों में सजनों इस यज्ञ के दौरान ही अपने भावों को निर्मल बना लेना ताकि लेश मात्र भी दुर्भाव अंदर न पनपे और सर्वत्र सदा सजनता विद्यमान रहे। याद रखना यह समय व्यर्थ गँवाने का नहीं अपितु अपने मन से सम्पूर्ण विकारों का उन्मूलन कर सतवस्तु धारण करने का है। अतः अपना हृदय सचखंड बनाने का पुरुषार्थ दिखाना। इस संदर्भ में आत्मोन्नति के दौरान रास्ते में आनेवाली परेशानियों व परिस्थितियों से घबराना नहीं अपितु याद रखना कि मार्ग में आने वाली समस्याएँ, कठिनाईयाँ तथा असफलताएँ परीक्षा के रूप में हमारी दृढ़ता, धीरता व क्षमताओं का विकास करने के लिए अनिवार्य हैं। अतः इनसे घबराकर या निराश होकर, जीवन के प्रति नकारात्मक रवैया अपना कर हाथ पर हाथ रखकर मत बैठ जाना यानि अर्थहीन जीवन जीते हुए भाग्य को दोष मत देना। अपितु वीरों की भांति नियति के यानि अदृष्ट ईश्वरीय शक्ति के विधान पर सुदृढ़ विश्वास रखते हुए, प्रभु के हर हुक्म की पालना हँस कर सहज भाव से करना। इस तरह जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाकर मार्ग में अवरोध उत्पन्न करने वाली हर बाधा/परिस्थिति का सामना विचार शब्द को अंग-संग रखते हुए, साहस, शूरता व धीरता से करना और सच्ची लगन, एकाग्रता व शांति-शक्ति के बलबूते पर सत्य-धर्म पर डटे रहते हुए इन तमाम समस्याओं, कठिनाईयों तथा असफलताओं पर विजय प्राप्त कर लेना और ईश्वर के सपुत्र कहलाना। याद रखो यदि ऐसा कर लिया तो सुख-दुःख, जन्म-मरण, रोग-सोग, खुशी-गमी, मान-अपमान, अमीरी-गरीबी आदि में अपने चैतन्य स्वरूप में समरस स्थिर बने रह ही सकोगे साथ ही अमरता की प्रतीति कर मौत के भय से भी मुक्त हो जाओगे। यह होगा तमाम दुःखों, कष्टों, क्लेशों, तापों-संतापों व जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा पा अपने जीवन का अर्थ सिद्ध कर लेना यानि अमरपद प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त कर लेना। इस अमरपद यानि मोक्ष को प्राप्त करने के बाद फिर कभी भी संसार में वापिस लौट कर नहीं आना पड़ेगा यानि अपने सच्चे घर परमधाम में स्थित हो विश्राम को पाओगे। इसी संदर्भ में

अब ध्यान से सुनो और मानो कि आपके जीवन में या जगत में ईश्वर के हुक्मानुसार जो भी हो रहा है, वह सही हो रहा है :-

मानो
जो हो रहा है सही हो रहा है
जो हो रहा है, अच्छा हो रहा है
सुख की हैं घड़ियाँ या दुःख की हैं घड़ियाँ
क्योंकर मैं सोचूँ यह क्या हो रहा है

यह क्यों हो रहा है कैसे हो रहा है
वह सब जानता है सही हो रहा है
इंसान होकर भी वह जो कर रहा है
अच्छा-बुरा वह सब लिख रहा है
जो, जो चाह रहा है, वही दे रहा है
वह जो दे रहा है, सही दे रहा है
कर्म फल मिलने पर, रोना या हँसना
अज्ञान है यह, बुरी बात है
स्वीकारो ख़ुशी से, वह जो दे रहा है
वह जो दे रहा है, सही दे रहा है
दोनों परिस्थितियों में, समरस रहकर
अपने मन की, स्थिरता जनाओ
प्रसन्नचित्त होकर निज को जान जाओ
फिर सत्-वादी बन, रोशन नाम कहाओ

सजनों हम सभी कर्त्ता भाव से किए हुए कर्मों का अच्छा व बुरा कर्मफल प्राप्त होने पर मानसिक संतुलन खो बैठते हैं और फिर जो भी मन-वचन-कर्म द्वारा करते हैं उसके प्रभाव से एक तो हम ख़ुद वास्तविक अवस्था में नहीं बने रह पाते दूसरा अपने गृहस्थ आश्रम का वातावरण नकारात्मक बना लेते हैं जिससे मन विचलित हो उठता है, हृदय व मुख मुरझा जाता है यानि

यथार्थता से जीवन जीना कठिन हो जाता है। परिणामतः निंदा के पात्र बनते हैं व जीवन हार जाते हैं। हमारे में से किसी के साथ ऐसा न हो इसलिए सजनों इस विषय में हमने जो अभी सुना है उसी अनुसार अपना सकारात्मक नजरिया बनाना है अर्थात् समभाव नज़रों में कर समदर्शिता अनुरूप परस्पर सजन भाव का व्यवहार करते हुए श्रेष्ठ मानव बन जाना है। इस प्रकार सुख दुःख समकर जान सत्य धर्म के निष्काम रास्ते पर सुदृढ़ता से बने रह पर उपकारी नाम कहाना है व जीवन की बाज़ी जीत कर मृतलोक पर फतह पानी है। इस संदर्भ में यह तथ्य जानो किः-

जिसकी है यह सृष्टि वह जो चाह रहा है वही हो रहा है।
इसलिए मानो कि जो हो रहा है वह सब सही हो रहा है।।

यह मानते हुए सजनों प्रसन्नचित्त बने रहो। याद रखो प्रसन्नचित्त होने पर आत्मज्ञान प्राप्त करना कोई कठिन कार्य नहीं रहेगा। आत्मज्ञान प्राप्त हो गया तो ब्रह्म नाल ब्रह्म होना सहज हो जाएगा। सजनों यह महान कार्य आपने चालीस दिनों के इस यज्ञ के दौरान ही सिद्ध करना है। आप यह कार्य करने में सफल होवो इस हेतु हमारी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं।

दिनाँक 23 दिसम्बर 2018 का सबक़

सजन-भाव अपनाने का आवाहन -1

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,

उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों आजकल जीवन लक्ष्य सिद्धि हेतु चालीसे का यज्ञ उत्सव चल रहा है। इस शुभ समय काल के दौरान आओ यथार्थ रूप से सजन बनने का संकल्प लें और इस हेतु मिलकर बोलेंः-

'हम सजन हैं सजनता अपनायेंगे।

और सजनता अपनाकर श्रेष्ठ मानव बन जायेंगे।।'

जानते हो सजन क्या होता है?

'भला आदमी'।

यह तो ठीक है। परन्तु हक़ीकत में सजन का अर्थ है - आत्मा। आत्मा में ही परमात्मा है जो सब सुरतों के प्रियतम पति परमेश्वर साजन हैं। इस आशय से सजन बनने से तात्पर्य आत्म-स्वरूप में स्थित रहने से है। ऐसा सुनिश्चित करने पर ही हम शब्द ब्रह्म विचार धार परमार्थ के रास्ते पर निष्काम भाव व

स्थिरता से बने रह, सही अर्थों में सजन बन सकते हैं। याद रखो यदि सजन बनना है तो शरीर का प्रपंच आड़े नहीं आना चाहिये यानि 'हौ-मैं' व मान-अपमान, रोग-सोग, हर्ष-शोक, अमीरी-गरीबी, तेरी-मेरी का भाव नहीं सताना चाहिए। अब बताओ कि सजन क्या है?

'आत्मा'।

यदि हम हक़ीकत में सजन कहलवाना चाहते हैं तो हमें कौन सा भाव अपनाना होगा?

'आत्म-भाव'।

आत्म-भाव कौन अपना सकता है?

मौन।

याद रखो जिसके पास आत्मिक-ज्ञान होता है केवल वह ही आत्म-भाव अपना सकता है। अब बताओ कि आत्मिक-ज्ञान कहाँ से प्राप्त होता है?

'सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ से' व कुदरती आए हुए हृदय विदित चार वेद, छः शास्त्रों से।

तो यदि हम अभी तक हृदय विदित चार वेद, छः शास्त्रों से सद्ज्ञान प्राप्त करने में असक्षम इंसान, सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ का समझदारी से नित्य-प्रति अध्ययन व मनन नहीं करते तो क्या फिर हम आत्म-ज्ञानी बन सकते हैं?

'नहीं जी'।

तो क्या फिर हम आत्म-ज्ञान के अभाव में आत्मभाव अपनाने के योग्य बन सकते हैं?

'नहीं जी'।

क्या फिर हम सजन कहला सकते हैं?

'नहीं जी'।

निष्कर्ष यह निकला कि यदि हम सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ का नियमित रूप से अध्ययन व मनन नहीं करते और उसमें विदित आत्मिक-ज्ञान प्राप्त कर, अपनी वास्तविक पहचान नहीं करते तो जीवन का सारा खेल ही बिगड़ जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हमारे भाव का रूप ही बदल जाता है। भाव का रूप बदलने से अर्थात् सकारात्मता के स्थान पर उसके नकारात्मक हो जाने पर जीवन का व्यावहारिक रूप बदल जाता है। इस बदलाव के कारण ही इंसान परमार्थ का विचारयुक्त रास्ता छोड़, स्वार्थपर अविचारी रास्ता अपना मैं-मेरी में उलझ जाता है। कहने का आशय यह है कि जब हम आत्मिक-ज्ञान पढ़-सुन कर उसे धारण नहीं करते, तो दृष्टिगोचर हो रहे नश्वर संसार को ही धारण करने का स्वभाव अपना बैठते हैं। नश्वर संसार को धारण करने का अर्थ है - मिथ्यात्व को धारण करना। क्या संसार को धारण कर इस मिथ्यात्व को हम आजीवन अपने पास रख सकते हैं?

'नहीं जी'।

जो सदा हमारे पास रह ही नहीं सकता तो क्या हम उसका पूरा लाभ उठा सकते हैं?

'नहीं जी'।

क्या वह नश्वर क्षणिक सुख प्रदान करने वाला, अंत हमारे दुःख का कारण नहीं बनता?

'बनता है जी'।

इस तथ्य के दृष्टिगत सजनों हमारे लिये बनता है कि हम मिथ्यात्व/नश्वरता के भाव को छोड़, अपनी सुरत को निरंतर नित्य शब्द ब्रह्म के संग जोड़े रख, नित्यता के भाव को धारण करें और यथार्थपूर्ण जीवन जीना आरम्भ कर दें। जानते हो नित्य कौन है?

'ईश्वर यानि परमेश्वर या परमात्मा'।

परमात्मा कहाँ रहता है?

'आत्मा में'।

आत्मा हमारे अन्दर किस रूप में है?

'प्राण रूप में'।

तो इससे पहले कि हमारे प्राण पखेरु हो जायें, हमारे लिये बनता है कि हम यह शुभ संकल्प लें कि हम किसी के बहकावे में आकर यानि जीवन की सुख-दुःख रूपी परिस्थितियों में बहककर संसार को अपनाने की भूल कदापि नहीं करेंगे। इस सन्दर्भ में सजनों यदि हम परिस्थितियों में बहक समरस जीवन जीने में असमर्थ रहे तो समझ लेना कि हम अभी संसार के साथ जुड़े हुए हैं। कहने का आशय यह है कि यदि परिस्थितियों के वशीभूत होकर हम हर्ष या शोक में बहक जाते हैं तो समभाव-समदृष्टि हो, सद्-वृत्ति नहीं अपना सकते। इसका सीधा सा अर्थ होगा कि हम सांसारिकता का भाव लेकर इस जगत में विचर रहे हैं और सांसारिक उलझनों में फँस अपनी अक्ल गँवा बैठे हैं। इसके प्रति सब सत्यता से आत्मनिरीक्षण करो और यदि लगे कि हम ऐसे ही इन्सान हैं तो इस बुरी परिस्थिति से उबरने हेतु शब्द ब्रह्म विचार धारण कर जाग्रति में आओ। इस प्रकार जागृति में आकर कुछ ऐसा पुरुषार्थ कर दिखाओ जिस द्वारा मिथ्या जगत वल्लों मुख घुमा यानि अंतर्मुखी हो समभाव नजरों में करने में समर्थ हो जाओ। इस प्रकार समदृष्टि हो शास्त्र विहित नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत करते हुए अपने जीवन का मकसद सिद्ध

कर लो और अपना नाम रौशन कर लो। क्या आप चाहते हो कि आपके जीवन का बिगड़ा कारज भी ए विध् सँवर जाए?

'हाँ जी'।

तो फिर आपको अब तक स्वयं द्वारा अपनाये कठिन स्वभावों का परित्याग करना होगा और इसी के साथ बीती हुई पुरानी बातों को भी भूलना होगा यानि मानसिक मौन धारण करना होगा। कहने का आशय यह है कि आज जो सर्व हित की बात हो रही है, केवल उस बात को स्मृति में रखकर तत्क्षण ही सजन पुरुष बनने के प्रति क्रियाशील होना होगा। क्या यह सबको मंजूर है?

'हाँ जी'।

याद रखो ऐसा करने पर ही आप यह बोलते हुए कि 'हम सजन हैं' अच्छे लगोगे। अभी तो आप में से अधिकतर सजनों को यह बोलते हुए देखकर लगता है कि जैसे झूठ बोल रहे हो। क्या आपको अपने साथ ऐसा फ़रेब करना खलता नहीं? क्योंकर सबको अपना गलत परिचय देते हो? क्यों बुरे भावों को संग रखते हुए भी अपने आपको बुरा कहलवाना पसन्द नहीं करते? क्या ऐसा करते हुए छोटापन लगता है? जानो यह अपने आप में झूठा अहंकार है। सजनों अगर चाहते हो कि इस शर्मिन्दगी का किसी को सामना न करना पड़े तो फिर सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के आगे हाथ जोड़कर प्रार्थना करो कि हे महाबीर जी ! हम सबको यथार्थ रूप में सजन बनने की सुमति व ताकत बक्षो ताकि हम मन-वचन-कर्म द्वारा सबको दर्शा सकें कि हम हक़ीकत में सजन हैं। याद रखो सजनों सजन बनने में ही हम सबकी लोक-परलोक में शान हो सकती है। इस शान को प्राप्त करने वाला ही परमधाम का अधिकारी सिद्ध हो सकता है।

अतैव सजनों यदि हक़ीकत में इस शान को प्राप्त करना चाहते हो तो मानसिक मौन धारण कर लो और वाणी से उतना ही सार्थक बोलो जितना

बोलना अति आवश्यक है। वाणी का ऐसा मौन तभी सधता है जब अन्तर्मुखी होकर ख़्याल आत्मस्वरूप में ध्यान स्थिर हो जाता है। स्पष्ट है कि जहाँ शब्द ब्रह्म विचार होते हैं वहाँ वाणी का मौन स्वतः ही सध जाता है यानि फिर किसी प्रकार का कोई यत्न करने की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि ऐसे इन्सान को फिर ज्यादा बोलना भाता ही नहीं है। इस परिप्रेक्ष्य में चाहे उसे मज़बूरीवश ऐसे अनावश्यक बोलने वाले संगी-साथियों के साथ रहना पड़ता है यानि विपरीत वातावरण में विचरना पड़ता है, पर वह उनमें रहते हुए भी उनसे स्वतन्त्र बना रहता है क्योंकि वह जगत में रहते हुए भी जगत से आज़ाद रहने की कला सीख जाता है। याद रखो जीवन जीने की यथार्थ कला को सीखना शेष समस्त अन्य कलाओं के सीखने से उत्तम है। इसी उत्तमता के आश्रय पर सजनों अधमता से उबर जाओ और सुकर्म करने लग जाओ। इस सन्दर्भ में सजनों सच्चेपातशाह जी कहते हैं:-

'उत्तम दा सीस ताज सुकर्म, उत्तम दा अटल राज सुकर्म।।
सुकर्मों में उत्तम जकड़ता है, दुःख कलेश कष्ट में आवे।
तो भी सुकर्म वह छोड़ता नहीं।।
सच वर्ते सच वर्त वर्तावे, सुकर्मां नूं धारण कर,
फिर किसी से वह डरता नहीं।

इस विषय में याद रखो सजनों कर्म, कुकर्म, अधर्म सबका कर्मफल प्राप्त होता है परन्तु जो सुकर्म करते हुए निष्काम बना रहता है, उसे कर्मफल नहीं भुगतना पड़ता। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि जो निष्काम कर्म करता है वह स्वार्थसिद्धि की भावना से रहित होकर सर्वहित हेतु कार्य करता है। इसलिए उसे कर्मफल का भोग नहीं भोगना पड़ता परन्तु जो व्यक्तिगत हित के लिये कार्य करता है उसको उस कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है। इस विषय में बड़े-बड़े धर्मात्मा भी हार खा जाते हैं। वे भी धर्म का उपदेश देते हुए व्यक्तिगत हित के चक्कर में फँसकर अपनी पूजा-मानता करवाने लग जाते हैं। ऐसा न हो इसीलिए सजनों इस द्वारे पर 'शब्द है गुरु, शरीर नहीं है', यह

नीति रखी गई है। इस नीति के अनुसार सजनों ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाना है यानि निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ानी है। अतः सजनों किसी को बड़ा या छोटा नहीं समझना अपितु सबको सम समझते हुए उनके साथ एक सा व्यवहार करना है। इन चालीस दिनों के दौरान सजनों ऐसा ही नेक सजन पुरुष बनने का भरसक यत्न करो। इस हेतु हिम्मत करो, हिम्मत करो और हिम्मत करके अच्छे इन्सान बन जाओ।

याद रखो ऐसा करने हेतु आपको निरन्तर अपना आत्म-निरीक्षण करते रहना होगा। इस आत्म-निरीक्षण के दौरान आपको अपने अन्दर छिपे उन सब बुरे भावों/दोषों/अवगुणों को ढूँढना होगा जो इन्सानियत के विपरीत हैं। इस तरह उन बुराईयों को ढूँढकर उन्हें त्यागने का साहस जुटाना होगा। ऐसा करने पर ही इन्सानियत अनुरूप अपना भाव-स्वभाव ढाल सकोगे। याद रखना ऐसा करते समय कठिनाईयाँ अवश्य आयेंगी, हो सकता है नुक्सान भी सहना पड़े पर आप उन सब से घबराना नहीं यानि उनके सामने कमज़ोर मत पड़ना। क्योंकि ऐसा करने से अन्त नतीजा आपको अच्छा ही प्राप्त होगा। इस तरह शक्तिशाली होकर शब्द ब्रह्म विचारों अनुसार इस जगत में विचरना और निर्दोष बने रहना। याद रखना जो शक्तिशाली नहीं होता, माया यानि लक्ष्मी उसे छल लेती है परन्तु जो शक्तिशाली होता है यानि जिसके हाथ में शान्ति-शक्ति का हथियार होता है और जो बुद्धिमत्ता से उसका प्रयोग करने में समर्थ होता है, उसे वह लक्ष्मी यानि माया वर लेती है। आशय यह है कि दुर्जनों को यह माया छलती है पर सजन पुरुषों को वर लेती है। ऐसा होने पर सम्पूर्ण जगत वैष्णव जन की तरह उस पूज्यवर की सेवा के निमित्त कार्य-व्यवहार करता है। इसी कारण यह लक्ष्मी यानि माया सबसे ताकतवर शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी श्री साजन जी के चरणों में विराजमान रहती है और इस जगत में जो भी जीव या चराचर आते हैं उन सबके लिए बिना किसी तर्क के उन मायापति की सेवा के निमित्त प्रसन्नचित्तता से क्रियाशील रहने का विधान है। याद रखो जो इन्सान आत्मविस्मृति के कारण तर्क शुरु कर देता

है, उसका अपने मन पर से अंकुश छूट जाता है यानि उसका मन उसकी बुद्धि पर हावी हो जाता है। जिस प्रकार सजनों घर में बिगड़ा हुआ बच्चा पिता की नींद उड़ा उसका सुख चैन सब हर लेता है, उसी प्रकार निरंकुश मन जब बुद्धि पर हावी हो जाता है तो इन्सान अचेत हो जाता है यानि वह सत्य-असत्य व भले-बुरे की परख कर यथार्थ को जानने में असमर्थ हो विवेकहीन हो जाता है। ऐसे में उस इन्सान को कोई भी इन्सानियत से गुमराह कर कुरस्ते पर चढ़ा देता है और दुराचारी बना देता है। सजनों चाहे आज समाज में यही हो रहा है पर आपको ऐसा नहीं बनना यानि आपने तो अपने मन पर अंकुश रखने वाला शक्तिशाली इन्सान बनना है। यहाँ हम पूछते हैं कि शक्तिशाली कौन होता है?

मौन।

याद रखो शक्तिशाली वही होता है जिस संतोषी ने धैर्य का श्रृँगार पहना होता है तथा जिस बुद्धिमान को ब्रह्म, जीव और जगत का समुचित ज्ञान होता है। ऐसा ब्रह्मज्ञानी ही रूप, रंग, रेखा रहित ब्रह्म क्या है, कैसे वह निर्गुण में खेल खेलता है तथा कैसे वह रूप, रंग, रेखा धारकर सर्गुण में सृष्टि का खेल रचता है, सब जानता है। इसी जानकारी के कारण ही वह सर्गुण के खेल खेलते हुए भी उनमें फँसता व अटकता नहीं अपितु ब्रह्म भाव अपना कर जगत की पालना के निमित्त जो भी करना उचित होता है वह प्रसन्नता से करता है। इस प्रकार सजनों जब कोई ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म, जीव और जगत का ज्ञान आत्मसात् कर जगत की रमज़ जानने में सक्षम हो जाता है तो उसे बोध हो जाता है कि:-

'ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा'

फिर जब वह अपनी आत्मा में प्रकाश रहे परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है तो बोल उठता है:-

‘आप हो ओ३म्-कार दे अन्दर हां हां।
शक्ति जित्ते ब्रह्माण्डे हां हां।।
कैसे चमके शक्ति हां हां।
कैसा चमके मन्दिर हां हां।।‘

इस महत्ता के दृष्टिगत सजनों आप भी प्रणव मन्त्र, मूल मन्त्र आद् अक्षर के महत्त्व को समझो और उसके जाप के प्रति कमज़ोर मत पड़ो। याद रखो यदि आप मात्र इतना कर लेते हो यानि एक उस आद् अक्षर की परख कर उसे पहचान लेते हो तो सब कुछ पा इन्सानियत में आ सकते हो। याद रखो इन्सान वही होता है जो सत्य-धर्म पर डटे रह इन्सानियत में रहने की हिम्मत रखता है यानि संसारी प्रलोभनों में उलझकर अपना धर्म नहीं छोड़ता। आप भी ऐसे ही बहादुर इन्सान बनने हेतु अपने ख़्याल का यानि सुरत का सम्बन्ध उस आद् अक्षर के साथ जोड़ो। याद रखो यदि हमारी सुरत का सम्बन्ध उस आद् अक्षर से जुड़ जाता है तो हमारा मन उसमें लीन हो जाता है। परिणामतः हम परमात्मा की तरह शक्तिशाली होकर इस जगत में विचरते हैं। फिर यह मायावी जगत हमें अपने में नहीं उलझा पाता। सजनों आपको भी इन शुभ दिनों के दौरान यह कारज सिद्ध कर लेना है। यह कारज जो सिद्ध कर लेगा, वही अपने सत्-चित-आनन्द स्वरूप को पा जन्म की बाज़ी जीत सकेगा। इस सारी बातचीत को सुनने के पश्चात् सारे सजन विजय का संकल्प लेकर जाओ ताकि इस संकल्प-सिद्धि हेतु दिल से अनथक परिश्रम करते हुए आगे बढ़ सको और अन्त विजयी होकर अपनी असली शान को प्राप्त कर सको। अन्त में सजनों जो आज आपने निश्चय लिया है, उसको सिद्ध करने हेतु आगे बढ़ो और अपने साथ-साथ अपने संगी-साथियों व परिवारजनों को भी इसमें प्रवृत्त करो ताकि वे भी बुरे से अच्छा इन्सान बन अपना जीवन सफल कर सकें। आप सब इस प्रयास में कामयाब हों, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

सजन-भाव अपनाने का आवाहन - 2

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,
उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों हम सब जानते हैं कि आजकल चालीसे का महायज्ञ चल रहा है। इस महायज्ञ की सिद्धि हेतु सबके हृदय में प्रसन्नता व चेहरों पर मुस्कुराहट होनी चाहिये। इस तरह आप सब प्रसन्नचित्तता से समभाव-समदृष्टि के सबक़ अनुसार परस्पर सजन भाव का निष्काम भाव से व्यवहार करते हुए, अपने परिवारों में एकता व शान्तिप्रिय वातावरण का सृजन करो। ऐसा सुखद व आनन्ददायक वातावरण बनाने हेतु आज सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार जानो कि सजन भाव क्या हैः-

सजन-भाव क्या है?

सजन-भाव हृदय में उत्पन्न होने वाला ऐसा सात्विक भाव या ख़्याल है जो भगवान की सर्वव्यापकता जना देता है अर्थात् यह सत्यता, एकता व एक अवस्था का प्रतीक है। यह निर्वैर, निर्भय, निर्विकार बने रहने का भाव यानि मैत्री-भाव है। सजन-भाव वह निर्मल बाणा है जो वृत्ति, स्मृति, बुद्धि व वाणी

को निर्मलता में संजोए रखता है। परिणामस्वरूप कुल जहान निर्मल भासता है और हमारे लिए इस मिथ्या जगत में सब कुछ करते हुए भी इस जगत से आजाद रहना सहज हो जाता है।

प्रश्न- सजन भाव को पकड़ने हेतु सर्वप्रथम क्या करना है?

उत्तर- इस हेतु पहले जिह्वा को स्वतन्त्र करना है तथा फिर संकल्प को स्वच्छ करना है। संकल्प के स्वच्छ होने से दृष्टि अपने आप ठीक हो जाएगी।

प्रश्न- जिह्वा को स्वतन्त्र कैसे करना है?

उत्तर- अपनी जिह्वा द्वारा कटु शब्दों व अपशब्दों जैसे गाली-गलौच, निंदा चुगली आदि का प्रयोग न करके तथा सदैव जी-जी व सजनता सूचक मधुर शब्दों का सत्यता व स्पष्टता से उच्चारण करके उसे स्वतन्त्र रखा जा सकता है।

प्रश्न-संकल्प किस प्रकार स्वच्छ होगा?

उत्तर- सजन और संगी बनाने से।

प्रश्न-संकल्प को सजन और संगी कैसे बनाना है?

उत्तर- 'जो मन मन्दिर, सो ही महाराज का रूप सारे जग अन्दर, जनचर-बनचर, जड़-चेतन एक ही रूप'। इस सत्य को आत्मसात् कर लेने से हमारा संकल्प स्वतः सजन और संगी हो जाएगा।

प्रश्न-संकल्प के पूर्ण रूप से सजन हो जाने पर क्या होगा?

उत्तर- जब हमारा संकल्प पूर्ण रूप से सजन हो गया तो फिर घर भी सजन, परिवार भी सजन व कुल संसार भी सजन हो जाएगा। फिर हमारा झुखना बंद हो जाएगा। झुखने का अर्थ है रोना। संकल्प के सजन हो जाने पर दृष्टि

अपने आप ठीक हो जाएगी और संतोष का सवाल हल हो जाएगा।

स्पष्ट है सजनों कि सजन भाव का वर्त-वर्ताव करने से इन्सान आत्मतुष्ट हो जाता है और इन्सानियत अनुरूप चलन में ढल जाता है। फलतः पारस्परिक स्पष्टता पनपती है और घर-परिवार में एकता का वातावरण बनता है। ऐसे एकता-युक्त संगठित परिवारों की फिर निराली ही शान होती है और उनके पारिवारिक सदस्यों का जीवन सुन्दर व अर्थपूर्ण बन जाता है। जीवन सुन्दर बन गया तो इन्सान के अन्दर अफुर अवस्था पनपती है और सत्य-धर्म की निष्काम भाव से भक्ति करते हुए अपने जीवन का वास्तविक अर्थ सिद्ध करना सहज हो जाता है। इसी बात को अब दूसरे तरीके से जानोः-

सजनों उपरोक्त बातचीत कहने का आशय यह है कि जहाँ परस्पर सजनता का व्यवहार होता है, वहाँ कोई भी मानसिक तौर पर किसी के प्रति बुरा नहीं सोचता। जब बुरा नहीं सोचता तो वह इन्सान किसी को बुरा नहीं बोलता और न ही किसी का बुरा करता है। ऐसा सुन्दर व प्रिय वातावरण ही सजनों मानवता के सिद्धान्तों के अनुरूप उचित माना जाता है क्योंकि मानवता का सिद्धान्त भी यही कहता है कि 'मिलजुल कर रहो और सर्वहित के निमित्त दिलचस्पी में आकर दिल से सब काम करो'। यह अपने आप में बुद्धिमत्ता से ताकतवर होकर, स्वार्थपरता का चलन छोड़कर, परम अर्थ के निमित्त सात्विक व श्रेष्ठ जीवन जीते हुए, परमपद को प्राप्त करने की बात होती है। आप सबको भी सजनों इन चालीस दिनों के दौरान 'मैं-तूं', 'वड-छोट' के भाव से रहित होकर अपने अन्दर यह स्वाभाविक परिवर्तन सुनिश्चित रूप से लाना ही लाना है और किसी भी कारण यानि परिस्थितिवश कमज़ोर नहीं पड़ना। इसके प्रति सबने खुद पर सतर्क यानि ख़बरदार रहना है। याद रखना यदि कोई भी ऐसा करने में फेल हुआ तो उसे बाद में पछताना पड़ेगा क्योंकि उसे इस महातप का कुछ भी फल प्राप्त नहीं होगा जो अपने आप में जीवन की बाजी हारने की बात होगी। अतैव यदि हक़ीकत में परमेश्वर की अनुकंपा प्राप्त करना चाहते हो तो जितेन्द्रिय बन, एक तपस्वी की भान्ति सुदृढ़ होकर इस

महान कारज की सिद्धि करने में ही अपनी शान समझो। इससे न केवल आपको, बल्कि आपकी बहू-बेटियों, बेटों व अन्य पारिवारिक सदस्यों को भी प्रसन्नता मिलेगी और वे भी सहर्ष इस महान कारज की सिद्धि में आपका साथ देंगे।

इस महत्ता के दृष्टिगत सजनों अभी से आत्म-निरीक्षण द्वारा अपनी कमियों/दोषों/बुराईयों/अवगुणों की जाँच-परख करो और आत्म-नियन्त्रण रखते हुए उनका सुधार कर डालो। आशय यह है कि जो उचित है उसे अपना लो व जो अन्दर खलबली पैदा करता है, बुराई उत्पन्न करता है, उसे त्याग दो। मात्र इतना सा यत्न करने से सारी खोट दूर हो जायेगी और आपका मन संकल्प रहित हो जाएगा। इस सन्दर्भ में जैसे खाना बनाने से पूर्व दाल बीनते समय अत्यन्त पैनी नज़र से उसमें रोड़ा, तीला व कंकर आदि ढूँढकर उसे साफ करते हो, उसी प्रकार अपने अन्दर भी छिपे हुए दोषों को पूरी गम्भीरता व सतर्कता से ढूँढकर बाहर निकाल फैंको। एक बार वह दोष दूर नहीं होता तो बार-बार यह क्रिया तब तक करो जब तक अन्दर पूरी सफाई नहीं हो जाती। याद रखो निर्मल वातावरण में ही हृदय में आत्मज्ञान स्फुटित होता है, अतः जितनी जल्दी हो सके, अपने अन्तःकरण के वातावरण को निर्मल, विशुद्ध व शीशे की तरह पारदर्शी बनाओ ताकि आत्मसत्ता प्रतिभासित होने लगे। इतना करने से आप सजन-भाव को पकड़ सकोगे और जो मन-मन्दिर देखा है, वही जग अन्दर देखते हुए सजन युग की नींव स्थापित करने के योग्य बन जाओगे।

इन चालीस दिनों के दौरान इस कारज को अवश्य सिद्ध कर लो ताकि जीवन सफल हो जाये। याद रखो इस नेक काम में देरी करना उचित नहीं है क्योंकि आयु की घड़ियाँ बीतती जा रही हैं अतः विलम्ब करना हानिकारक है। आपको इस हानि का सामना न करना पड़े इस हेतु अब अविलम्ब इस कारज में जुट जाओ। इस सन्दर्भ में सतर्क रहना कि कहीं मनोकामनाएँ आपके रास्ते में अवरोध उत्पन्न कर जीवन उन्नति में बाधक न सिद्ध हो जायें। यदि ऐसा

हुआ तो जो कारज सिद्ध करने निकले हो, वह कठिन प्रतीत होने लगेगा। इसके प्रति सावधान रहना और खुद पर आत्म-नियन्त्रण रखते हुए उन पर विजय प्राप्त कर लेना। याद रखो यदि एक दो बार इस प्रकार अपने ऊपर विजय पाने में सफल हो गये तो फिर जितेन्द्रिय बनकर मन को वश में रखना कोई कठिन कार्य नहीं रहेगा। क्या आप चाहते हो कि ऐसा ही हो?

'हाँ जी'।

तो फिर सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसारः-

'कलुकाल दी सजनों छडो वृत्ति, सतवस्तु दी वृत्ति धारण करो।'

इतना करने से ही सजनों आत्मिक, पारिवारिक व सामाजिक रूप से एकता, एक-अवस्था में आ जाओगे। इस प्रकार यदि एक बार आप एकता, एक-अवस्था में आ गये तो फिर इस एकरसता को किसी कारण भी भंग मत होने देना। यदि ऐसा करने में कामयाब हो गये तो सब भिन्न-भेद, वैर-विरोध, लड़ाई-झगड़ा, तेरी-मेरी, वड-छोट का भाव मिट जायेगा और समभाव स्थापित हो जायेगा और समदृष्टि हो परस्पर आत्मीयता का व्यवहार करना सहज हो जाएगा। सजनों जान लो कि आत्मीयता के सम्बन्ध में कभी भी शरीर आड़े नहीं आता। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि ख़्याल शरीरों से ऊपर उठकर जो सर्व एक आत्मा का सम्बन्ध होता है उसके साथ अपना नाता जोड़ने में कामयाब हो जाता है। परिणामतः सब अपने समरूप ही जान पड़ते हैं। सजनों जहाँ भी ऐसा होता है, वहाँ एक-दूसरे के प्रति प्रियता का, सजनता का भाव अपने आप पनपता है। इस महत्ता के दृष्टिगत सजनों अब तक जो भी किसी के प्रति आपके मन में दुर्भाव पैदा हो चुका है, उसे बाहर निकाल फैंको। इस सन्दर्भ में चाहे किसी ने आपको कितना भी दुःख क्यों न दिया हो, उसे भी यकदम अतीत समझ कर भुला दो और सारा रोना-झुखना मिटा दो। याद रखो सजनों जो गुजर गया उसको छोड़ देने में ही भलाई होती है अन्यथा उसको याद करने वाला तो आजीवन कल्पनाओं में फँस रोता ही रहता है।

इसलिये अब के बाद सजनों जो भी आपके सामने आये, उसके अतीत पर दृष्टिपात मत करो अपितु उसे आज यानि वर्तमान में वह क्या है, उस रूप में ही देखो और उसके साथ आज की ही बात करो। ऐसा करने से सजनों उखड़े दिल मिल जायेंगे और इको दिल हो जायेगा। इस तरह सारी कल्पना मिट जायेगी और जीवन बेहतर हो जायेगा। फिर सत्य-धर्म का निष्काम भक्ति-भाव सहजता से अपना पाओगे।

याद रखो सजनों यह भक्ति-भाव वही अपना पाता है जो आद् अक्षर के अजपा जाप द्वारा अपने ख़्याल को गहनता से शब्द ब्रह्म में लीन कर आत्म-तृप्त यानि परिपूर्ण हो जाता है। ऐसा इन्सान फिर जीवन में सब कुछ पा लेता है। यह प्राप्ति उस अकेले के लिये नहीं अपितु सबकी साँझी होती है। इस बात को समझते हुए वह अपनी पूजा-मानता में नहीं फँसता अपितु 'शब्द है गुरु शरीर नहीं है' इस सत्य पर डटा रहता है। इस तरह एक सन्तोषी इन्सान की तरह वह धीरता से शब्द ब्रह्म विचारों को अमल में लाता हुआ परोपकार कमाता है और जन्म की बाज़ी जीत जाता है। यदि आप सब भी ऐसा इन्सान बनना चाहते हो तो दिल से मेहनत करो और अपने मन को प्रभु में लीन कर लो ताकि समभाव-समदृष्टि के उसूलों पर खरे उतरना सहज हो जाये।

इस संदर्भ में सजनों हिम्मत दिखाओ और इस हेतु मन व वाणी का मौन साध लो। याद रखो मन का मौन वाणी के मौन से उत्तम है क्योंकि मानसिक मौन में भूत-भविष्य की कोई सोच नहीं सताती अपितु हमेशा वर्तमान में स्थिति रहती है। कहने का आशय यह है कि अतीत की स्मृतियों, भविष्य की कल्पनाओं व हर प्रकार की प्रतिस्पर्धा और प्रतिद्वन्द्वता की दुर्भावना से मुक्त होकर ऐसा इन्सान, सदा जो उसके पास है, उसका सर्वहित हेतु कैसे इस्तेमाल कर सकता है उस पर विचार करता है। तभी तो वह निःस्वार्थी व आत्म-विश्वासी ईश्वर के आदेश को सुन-समझकर, तद्नुकूल आचरण कर अपना जीवन प्रयोजन सिद्ध करने में सफल हो पाता है। इस तथ्य के दृष्टिगत सजनों हमें भी जो हमारे पास है उसमें सदा सन्तुष्ट रहना है। दूसरों के पास हमारे से

अधिक क्या है या जो उनके पास है, हमारे पास क्यों नहीं है इस तुलना में फँसकर अपने जीवन को असन्तोष, झूठ, चोरी-चकारी, ठगी व प्रतिस्पर्धा की ज्वाला में नहीं जलाना। याद रखो इस कलियुग में कभी भी किसी के पास एक सा नहीं हो सकता, इसलिए हर परिस्थिति में जो अपने पास है उसी हैसियत में प्रसन्न बने रहो यानि साग को भी कड़ाह समझो। ऐसा करने से साग भी एक दिन कड़ाह हो जायेगा और उजड़या घर वस जायेगा। ऐसा करने से हक़ीकत में जीवन का आनन्द मान सकोगे। आप भी सजनों इस आनन्द को मानते हुए सदा सुखी बने रहो, इस हेतु हमारी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं।

दिनाँक 06 जनवरी 2019 का सबक़

जीवन उद्देश्य के प्रति पुरुषार्थ/उद्यम की प्रेरणा-1

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,
उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों मानव जीवन बड़ा अनमोल है। एक विशिष्ट उद्देश्य के निमित्त इस जीवन का धरती पर प्रार्दुभाव हुआ है। वह उद्देश्य है-समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार सर्वव्याप्त निज परमात्म स्वरूप की पहचान कर, उसी के निमित्त व उसी के हुक्मानुसार निष्काम व सजन भाव से इस चराचर जगत की सेवा करना व इस प्रकार अपने मन-वचन-कर्म द्वारा सत्य को धर्मसंगत प्रतिष्ठित कर, अन्यों को भी तद्नुरूप आचरण अपनाने के लिए प्रेरित करते हुए परोपकार कमाना।

सजनों यदि गहनता से देखा जाए तो इस उद्देश्य पूर्ति को जीवन की एकमात्र आवश्यकता बनाना और तद्नुरूप क्रियाशील होना हमारा सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। इस संदर्भ में जिस प्रकार लक्ष्यभेद के लिए तीर को सही दिशा में छोड़ना आवश्यक होता है उसी तरह जीवन प्रयोजन को केन्द्र बिन्दु मानकर इसकी प्राप्ति हेतु सफलता-विफलता के भाव से मुक्त होकर, पूरी लगन, निष्ठा व शक्ति से उत्साहपूर्वक यथासंभव निरंतर प्रयास करना यानि समय का

सदुपयोग करते हुए दृढ़ता व कर्मठता से जुटना अनिवार्य होता है। यह अनिवार्यता हमसे कर्त्तापन के अभिमान, सांसारिकता, मोह-माया व आत्मसुखों के त्याग की अपेक्षा करती है ताकि हम मैं-मेरा, तथा मानसिक दासता यानि अपने मन तथा इन्द्रियों की परिवर्तनशील, क्षणभंगुर, नाशवान लौकिक सत्ता से ऊपर उठकर अपनी पारलौकिक यानि चिरंतन शाश्वत सत्ता, उसकी अगाध शक्तियों व दिव्य गुणों को पहचाने और आत्मोथान/आत्मोन्नति के मार्ग पर प्रशस्त हो आत्मोद्धार कर सकें। आओ अभी इसी बात को दूसरे तरीके से समझते हैं:-

वस्तुतः सजनों जो अभी हमें बताया गया वही हमारे जीवन का ध्येय है जिसके विषय में अथर्ववेद में कहा गया है 'उन्नति करना और आगे बढ़ना यही जीवात्मा का उद्देश्य है'। इसी उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त सजनों समस्त जप-तप, पूजा-पाठ, भजन-बन्दगी, सत्संग-संयम, आराधना-उपासना व नीति-नियमों की पालना की जाती है और आत्मशोधन द्वारा, अपने भीतर की गहराइयों में प्रविष्ट होकर परम शांति व आनन्द के स्थायी, शाश्वत, अमर और अनंत स्रोत के साथ एकाकार होने का प्रयास किया जाता है।

सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के द्वारे पर होने के नाते सजनों हमें भी समय-समय पर विभिन्न प्रयोजनों, सत्संग व समभाव-समदृष्टि के स्कूल में कराई जा रही आत्मिक पढ़ाई द्वारा जीवन के इस प्रधान लक्ष्य को आत्मसात् कर अपना जीवन सार्थक करने के प्रति प्रेरित किया जाता है परन्तु जैसा कि कहते हैं कि अंधकार में तीर छोड़ने पर लक्ष्यभेद करना संभव नहीं हो पाता उसी प्रकार पर्याप्त सूझबूझ, दृढ़ता, एकाग्रचित्तता व मननकारी के अभाव में हम अज्ञानी, आदत से मजबूर होकर, द्वि-द्वेष, आलस्य, निद्रा, कलह, वाद-विवाद, वैभव, ऐश्वर्य, मान-मर्यादा, झूठी शान-ओ-शौकत, प्रतिस्पर्धा, आमोद-प्रमोद व अनेकानेक व्यसनों में समय बरबाद करने के कारण अपने लक्ष्य को नहीं भेद पाते और विघ्न उपस्थित होते ही तुरंत विचलित हो जाते हैं। परिणामतः प्रयत्न को अधूरा छोड़ उद्देश्य पूर्ति से वंचित रह जाते हैं यानि

दुर्लभ मानव जीवन पाकर भी असली मकसद को प्राप्त करने का अवसर खो बैठते हैं। इस संदर्भ में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी आलम अपनी विवशता बताते हुए परवरदिगार परमेश्वर को कह रही हैः-

सानुं आदत करे मजबूर हां हां हां हां असां फिर फिर करूं कसूर।

यहाँ समझने की बात यह है कि इस अनमोल मानव जीवन को प्राप्त कर उसे सँवारने का अवसर बार-बार हाथ नहीं आता और जो आए अवसर को असावधानी या अचेतनता के कारण गँवा बैठता है वह बाद में पछताता है। जैसा कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा भी गया हैः-

जो वक्त हत्थां विचों निकल गया हां-हां-हां-हां,
फिर पिच्छों पछताओगे तुम।
बिगड़ी बात किस तरह संवरे ओ रो रो ढाईं मारोगे तुम

अतः

हुण वक्त तुसां सम्भलो सजनों फिर वक्त नहीं आना जे
जन्म दी बाज़ी हार बैठे, फिर उमरां पछोताना जे,
फिर उमरां पछोताना जे,

कहने का आशय सजनों यह है कि चाहे प्रकृति प्रदत्त शक्तियों के आधार पर इंसान की जीवन यात्रा चलती रहती है यानि शिशु विकसित होकर किशोर व समय पाकर युवा हो जाता है और शारीरिक और बुद्धि बल से निरंतर विकास के मार्ग पर बढ़ता चला जाता है परन्तु कठिनाई तब पैदा होती है जब निजी भाव-स्वभावों के कारण विकास की यह यात्रा अचानक कहीं रुक जाती है और जीवन की नौका भँवर में फँस जाती है यानि जीवन के झमेलों, विपत्तियों व कठिनाईयों द्वारा अवरोध उत्पन्न होने पर जीवन की गाड़ी हिचकोले खाने लगती है और व्यक्ति किंकर्त्तव्य-विमूढ़ (जिसे यह न सूझ पड़े कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं) हो जाता है। इस अवस्था के अंतर्गत जब दर-दर की

ठोकरें खा-खाकर जीवन स्थिति इतनी बिगड़ जाती है कि छुटकारे का कोई उपाय दिखाई नहीं देता यानि आशा की कोई किरण नज़र नहीं आती तो उस समय अंतर्मन में प्रश्न उठता है कि आखिर इस विकट परिस्थिति से उबारेगा कौन? किसके किए होगा आत्मोद्धार?

इस प्रश्न के उत्तर में तब अंतर से आवाज आती है कि प्रत्येक व्यक्ति अपना उद्धार स्वयं आप ही यानि अपने आत्मिक बल की सहायता से कर सकता है। कोई बाह्य साधन इसमें कारगर सिद्ध नहीं हो सकता। अतः आत्मोद्धार की प्रबल चाहना, वैराग्य, अनुशासन और सतत् अभ्यास के बल पर यानि अपने सहायक स्वयं बनकर, अपने आश्रय पर स्वयं, समभाव-समदृष्टि की युक्ति प्रवान कर, आत्मविश्वास के साथ ऊपर उठो और मोह-माया के बंधन तोड़ यानि अपने मन, अपनी इन्द्रियों, अपनी इच्छाओं/कामनाओं पर नियन्त्रण स्थापित कर, जीवन के तमाम झमेलों, विपरीत परिस्थितियों व अंतर्निहित बुराईयों पर विजय पा मोक्ष पा लो। मानो यही मुक्ति सर्वश्रेष्ठ है व परम संतोष प्राप्ति का अमोघ साधन है। इसी की प्राप्ति होने पर जीवन सार्थक प्रतीत होता है व जीवन का हर एक पल अनमोल लगने लगता है।

अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि अपने आप पर विश्वास यानि परमात्मा में विश्वास यही विजय प्राप्ति का सबसे बड़ा सम्बल है। इसके अभाव में बाहरी सहायता की सभी बैसाखियाँ झूठी साबित होती है और जीवन संघर्ष की सभी सफलताएँ संदिग्ध हो जाती हैं। जैसा कि कहा भी गया है:- 'अपना केन्द्र अपने से बाहर मत रखो, यह तुम्हारा पतन कर देगा। अपने आप में अपना पूर्ण विश्वास रखो, अपने केन्द्र पर डटे रहो, कोई चीज़ तुम्हें हिला तक न सकेगी'।

इस बात को दृष्टिगत रखते हुए अपने आप, अपने अज्ञान का उद्धार करो। अज्ञान है असत्, परिवर्तनशील, क्षणभंगुर, नाशवान, जड़-सत्ता को सत्य मानकर उसमें प्रीति लगाना व मोह-माया व छल-प्रपंचों से ग्रस्त हो तद्नुरूप व्यवहार करना। याद रखो इसी अज्ञान के कारण व्यक्ति में, जीवात्मा को गुण

तथा गुण के कार्यों से पृथक न समझने का अविवेक उत्पन्न हो जाता है और 'मैं-भाव' यानि अहंकार बना रहता है। इस अहंकार के विकसित होने से कर्त्ता-भोक्तापन विकसित हो जाता है और इंसान नाना प्रकार के कष्टों व दुःखों से ग्रसित हो जाता है। कहने का आशय यह है कि जब तक यह अज्ञान का बादल नहीं छँटता तब तक मनुष्य का उद्धार संभव नहीं हो पाता परन्तु जैसे ही सजन श्री शहनशाह हनुमान जी द्वारा प्रदत्त अनूठी समभाव-समदृष्टि की युक्ति की प्रवानगी द्वारा अज्ञान अंधकार से छुटकारा मिल जाता है, तत्क्षण ही आत्मा/परमात्मा की पहचान हो जाती है, आत्म-साक्षात्कार हो जाता है और आत्मोत्थान के लिये प्रयासरत हो आत्मस्वरूप होना सहज हो जाता है।

इस संदर्भ में याद रखो जब तक आप अपने अज्ञान को दूर करने के लिये स्वयं कटिबद्ध नहीं होंगे, तब तक आपका उद्धार कोई नहीं कर सकेगा। इसलिए दूसरों का भरोसा मत करो अपितु यथार्थ ज्ञान प्राप्त करो। यथार्थ कहता है कि स्वार्थपरता के कारण आज जिसमें दिन-रात लीन हो, वह सब का सब यहीं छूट जाएगा। सारी कामनाएँ यहीं प्रविलीन हो जाएँगी। अतः संसार के पदार्थों के बारे में सदा चार बातें ध्यान में रखो -

1. संसार के पदार्थ सदा मिल नहीं सकते।

2. इन्द्रियों में उनकी भोग की शक्ति हमेशा रह नहीं सकती।

3. मन में रुचि सदा नहीं रह सकती।

4. हमेशा भोक्ता नहीं रह सकते।

अर्थात् विषयों में नित्यता नहीं, इन्द्रियों में सामर्थ्य नहीं, मन में रुचि नहीं और आत्मा में भोक्तापन नहीं - इस बात का सत्य बोध हो जाना ही आत्मोद्धार का साधन है।

इस बात को ध्यान में रखते हुए अज्ञान और अज्ञानजन्य संसार से उद्धार हेतु

अपना अध्ययन यानि अपने भावों, वृत्तियों-प्रवृत्तियों, योग्यताओं-अयोग्यताओं, अभिप्रेरणाओं व आचार-विचार व व्यवहार आदि का आंकलन सही तरीके से आप करते हुए, अपनी तलाश आप करो क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ भी कह रहा है:-

फिर फ़स्ट दी एहो है निशानी,
अपनी ए करन निगाहबानी ओ सजन अपनी ए करन निगाहबानी।
फिर आलम एहो परिश्रम दिखाओ, फिर है नहीं कोई हैरानी,
फिर है नहीं कोई हैरानी।।

इस तरह सजनों शास्त्र का मनन व विचार करते हुए ध्यान द्वारा सत्य को जानने का प्रयास करो और उसके प्रति पूर्णता समर्पित हो, विपरीतता व विषमता के मध्य भी उस पर डटे रहने का अभ्यास करो।

याद रखो जो इस प्रकार दुःखमय संसार को पार कर, अभयपद प्राप्त करना चाहता है, उन निष्कामियों के लिये सत् परब्रह्म परमेश्वर है। अतैव मूलमंत्र आद् अक्षर के अजपा जाप द्वारा ख़्याल को ध्यान वल व ध्यान को प्रकाश वल कर उस परब्रह्म परमेश्वर का बोध करने का प्रयास करो और उसी में समा जाओ। यही आपके जीवन का परम लक्ष्य है। अब ध्यान से सुनों आपको आपके जीवन के इस उद्देश्य के प्रति जाग्रत करते हुए सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ क्या कह रहा है:-

चौपाई

तूं पिच्छे कदम न हटावीं, ऐसा पुरुषार्थ कमावीं।।
हुन तूं अगे कदम बढ़ावीं, तूं ऐसा उद्यम दिखावीं।।
उमरा चरणां विच बितावीं, तूं रज मस्तक नूं लावीं।।
ओ ओझड़ हिन बहुतेरे, ओ चोभां देवन जेहड़े।।
ओन्हां विच अटक न जावीं, तूं पिच्छे कदम न हटावीं।।
विसूचिका ओ पई डरावे, ओ कष्ट कलेश दिखावे।।

ओदे फंदे तों बच के राहवीं, तूं पिच्छे कदम न हटावीं।।
हंकारी ऐसी गर्ज दिखावे, दासियां दा दिल कम्ब जावे।।
जीव नूं ताकत दे विच लियावीं, तूं पिच्छे कदम न हटावीं।।
जेहड़े हैन ए तेरे प्यारे, ओ फांसी लई खड़े हिन सारे।।
तूं फांसी विच न फस जावीं, तूं पिच्छे कदम न हटावीं।।
महाबीर जी ने ए फ़रमाया, दासी ने तुहानूं खोल सुनाया।।
महाबीर जी दे चरणां विच राहवीं, तूं पिच्छे कदम न हटावीं।।

ध्वनिः सदके मैं सारी ओ सारी, सोहणी तेरी सूरत तों।।
वारी मैं वारी ओ वारी, प्यारी तेरी मूरत तों।।
सोहणी तेरी सूरत तों, मन मोहनी तेरी मूरत तों।।
पंजां तत्तां नूं वारां, सोहणी तेरी सूरत तों।।

सजनों उपरोक्त कीर्तन में एक मानव को कैसा पुरुषार्थ व उद्यम दिखाने के लिए प्रेरित किया गया है इस विषय में हम आगामी सप्ताह बात करेंगे।

दिनाँक 13 जनवरी 2019 का सबक़

जीवन उद्देश्य के प्रति पुरुषार्थ/उद्यम की प्रेरणा-2

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,

उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत सप्ताह सजनों हमने जाना कि मनुष्य की गति अधोगामी है। निरन्तर कामनाओं के चक्कर में पड़ा रहने के कारण वह सदा नीचे की ओर देखता है तथा छल-प्रपंच, माया-मोह का व्यवहार दर्शाते हुए, विषयी पदार्थों में ही शाश्वत सुख खोजने की भूल करता है। इस कारणवश वह अपने यथार्थ यानि परमात्मा या आत्मा को नहीं जान पाता। परन्तु जो शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि के स्वरूप एवं व्यापारों को गढ़ (खाई), अनित्य एवं अपने पतन का कारण मानकर कामनाओं की ओर से मुँह मोड़ लेता है और समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार आत्मा को इनके संश्लेष यानि मेल-मिलाप से सर्वथा मुक्त कर निज परमात्मा स्वरूप का बोध कर लेता है उसकी सारी कामनाएँ इसी जीवन में प्रलीन हो जाती हैं। इस प्रकार समस्त कामनाओं को त्यागने का पुरुषार्थ दिखा वह सच्चिदानन्द परमेश्वर को जान जाता है और इसी जीवन में ब्रह्म-सुख का अनुभव कर आत्मोद्धार कर लेता है यानि जीवन

के परम लक्ष्य को प्राप्त कर आनन्दस्वरूप हो जाता है। इसी तथ्य के दृष्टिगत सजनों किसी ने ठीक ही कहा है:-

अपने उद्धार और पतन में मनुष्य स्वयं ही कारण होता है।

निश्चित ही स्वयं अपना उद्धार करने हेतु परम पुरुषार्थ/उद्यम की आवश्यकता होती है क्योंकि कारज केवल मनोरथ यानि चाहने मात्र से नहीं अपितु सोद्देश्य किए गए युक्तिसंगत पुरुषार्थ यानि उद्यम से ही सिद्ध होते हैं। इस संदर्भ में जानो जो पुरुष का प्रयोजन है व उस द्वारा प्राप्त करने योग्य है यानि जिसके लिए उसे प्रयत्न करना चाहिए, वही पुरुषार्थ है तथा सतत् चेष्टा, परिश्रम, धैर्य, प्रयत्न, व अथक प्रयास का नाम उद्यम है। आओ अब जाने कि धर्म ग्रन्थों में जीवन के पुरुषार्थ को किस प्रकार अभिव्यक्त किया गया है:-

हमारे धर्म ग्रन्थों में सजनों धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, जीवन के यह चार परम पुरुषार्थ माने गए हैं। यहाँ धर्म से आशय जीवन के नियामक तत्त्व से है, अर्थ से तात्पर्य जीवन के भौतिक साधन से है, काम का अर्थ जीवन की वैध कामनाओं से है तथा मोक्ष से तात्पर्य जीवन के सभी बंधनों से मुक्ति से है। इस प्रकार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों का समन्वित रूप है। इस विषय में जहाँ अर्थ और काम, प्रवृत्ति के द्योतक हैं, वहीं धर्म व्यवस्थित कर्त्तव्यों का व मोक्ष त्रिविध् दुःख (तापत्रय) से अत्यंत निवृत्ति यानि आनन्द प्राप्त करने का सूचक है। पुरुषार्थ से ही इंसान को कर्म करते हुए सुख भोग व मोक्ष-लाभ का अवसर मिलता है। पुरुषार्थ ही इंसान को धर्म, अर्थ और काम लिप्सा से उबार कर, मोक्ष की ओर ले जाता है।

जीवन लक्ष्य प्राप्ति हेतु यानि आत्मज्ञान प्राप्त कर निज उद्धार करने हेतु सजनों मनोयोगपूर्वक, समस्त शक्तियों द्वारा निरंतर इसी प्रकार का पुरुषार्थ/उद्यम करने की आवश्यकता होती है यानि प्रमाद और अकर्मण्यता

को त्याग कर अपने समुचित बल (काय्-बल, मनोबल व आत्मिक बल) द्वारा निरंतर अभ्यासरत रहने की आवश्यकता होती है। अभ्यास इसलिए क्योंकि सतत् अभ्यास द्वारा मनुष्य को परिश्रम करने की आदत पड़ जाती है और कार्य का निष्पादन करने में कोई कठिनाई नहीं आती।

उपरोक्त के दृष्टिगत ही सजनों सामर्थ्य एवं उद्देश्य प्राप्ति की तीव्र अभिरुचि को पुरुषार्थ का अनिवार्य तत्त्व माना जाता है। अन्य शब्दों में जब तक सामर्थ्य नहीं होता यानि व्यक्ति में शारीरिक, मानसिक तंदुरुस्ती व बल नहीं होता, मानव चाह कर भी पुरुषार्थ नहीं कर पाता। इसी तरह कई बार देखा गया है कि सामर्थ्य होने पर भी मनुष्य उद्यम नहीं करता। ऐसे में उद्देश्य प्राप्ति के प्रति उदासीनता प्रमुख कारण होती है। स्पष्ट है सामर्थ्य पुरुषार्थ का आधारभूत साधन है परन्तु वह परिश्रम या उद्यम में तब तक नियोजित नहीं होता जब तक कि उसकी प्रेरक पृष्ठभूमि में उद्देश्य के प्रति अभिरुचि व उसकी प्राप्ति के प्रति ललक यानि तीव्र इच्छा सक्रिय नहीं होती। तभी तो सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी कहा गया है:-

विरला ओ चाल पकड़े जैंदे ओ मन विच सजनों एहो है चाओ,
सजनों एहो है चाओ।

इस संदर्भ में सजनों जानो भाग्य आश्रित रहने वाला या दूसरे का सहारा लेकर चलने वाला कभी भी पुरुषार्थी नहीं बन पाता क्योंकि ऐसा व्यक्ति न तो प्रबल प्रयत्न कर पाता है और न ही संघर्ष में पराक्रम प्रकट कर सकता है। अतः पुरुषार्थी के लिए आत्मावलंबन आवश्यक है। यह आत्मावलंबन इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है:-

अपनी किस्मत जितनी जे, हिम्मत इन्सानों हारो न,
अपनी किस्मत जितनी जे।
हनुमान जी दे वचनां दी पालना करो, दिलबर नूं दिलों विसारो न।।

इक वारी बाज़ी जित लई अपनी, फिर जीत सदा ही तुम्हारी है।
फिर जीत सदा ही तुम्हारी है, फिर जीत सदा ही तुम्हारी है।।
क्या दुनियां क्या नगर निवासी, क्या कर सके मौत विचारी है।
क्या कर सके मौत विचारी है, क्या कर सके मौत विचारी है।

निश्चित ही सजनों आत्मावलंबन के अभाव में उपरोक्त कीर्तन के अनुरूप पुरुषार्थ दिखाना संभव नहीं। इस विषय में याद रखो मात्र आत्मावलंबन ही नहीं, आत्मविश्वास के अभाव के कारण भी व्यक्ति का पुरुषार्थ सफल नहीं हो पाता क्योंकि ऐसा व्यक्ति अंतर्निहित शक्तियों का पूर्णतः नियोजन नहीं कर पाता और अंतर्निहित पौरुष को प्रकट करने में असफल रहता है। आत्मावलंबन व आत्मविश्वास मिलकर ही पुरुषार्थ की पुष्टि करते हैं और इन्हीं के द्वारा मनुष्य का पौरुष (प्रबल प्रयास, पराक्रम, वीरता) अपनी परिपूर्ण परिपक्व अवस्था यानि मनुष्यत्व की पूरी ऊँचाई के स्तर तक पहुँच पाता है। तात्पर्य यह है कि जब तक मनुष्य का प्रयास/परिश्रम अपनी पराकाष्ठा यानि चरमोत्कर्ष को नहीं छूता तब तक उसका पुरुषार्थ या पौरुष सफल नहीं हो पाता। अतः सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार सजनः-

परिश्रम ऐसा दिखा फुरना मत उठा, फुरना तूं मत उठा।।

स्पष्ट है सजनों पुरुषार्थ/उद्यम आन्तरिक प्रेरणा है। यह आन्तरिक ऊर्जा का प्राकट्य है, जो रोके नहीं रुकता। इसके अंतर्गत सतत् चेष्टा एवं कड़ी मेहनत निहित होती है जो दृढ़-संकल्प का रूप धारण करती है और व्यक्ति इसी के द्वारा शब्द ब्रह्म विचारों को निरंतर ग्रहण कर उन्हें जीवन व्यवहार के दौरान प्रयोग में ला पाता है। फलतः व्यक्ति में आत्म-विश्वास जाग्रत होता है और वह अकर्मण्यता त्याग कर कर्मठ बनता है। इस कर्मठता द्वारा, पुरुषार्थ असंभव लगने वाले कार्यों को भी संभव बना देता है।

अन्य शब्दों में सजनों हम कह सकते हैं कि पुरुषार्थी आत्मशक्ति को केन्द्रित

करते हुए उद्देश्य की सफलता हेतु शक्ति संचयन करता है तथा मनः शांति बनाए रखने के लिए चित्त की स्थिरता बनाए रखते हुए समर्पित भाव से व फलासक्ति को त्याग कर, केवल सुकर्म यानि पवित्र कर्म ही करता है और संघर्षों से जूझते हुए उस अदृश्य किंतु सार्थक फल की प्राप्ति कर लेता है जिसे उसने श्रेय यानि शुभ और शुद्ध आचरण का आधार मानकर लक्ष्य के रूप में चुना होता है।

हम सब भी सजनों अपने जीवनकाल में इस श्रेय को प्राप्त कर अपने मन व इस जगत पर विजय पा जाएँ इस हेतु सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अंतर्गत साजन जी हमें सजन श्री शहनशाह हनुमान जी का उदाहरण देते हुए कैसा परम पुरुषार्थ दिखाने के लिए प्रेरित कर रहे हैं, ध्यान से सुनोंः-

(श्री साजन जी के मुख के शब्द)

शब्दः-

पुरषार्थ सजनों यत्न करो, ओन्हां इक सवाल समझाया है।
अनेक स्वाल छुड़ाये के ओ नगर निवासियो,
महाबीर जी पर उपकार दिखाया है।।

श्री रामचन्द्र जी दा प्यारा देखो, कैसी हिम्मत लड़ाई हो।
फ़स्ट निकले सारी नगरी ऊपर, कैसी कीती कमाई हो।।
युग युग फ़स्ट निकलदे आये, फ़स्ट निकलन बलधारी हो।
तेज प्रताप ताकत नूं देखो, कैसे हिन सुखकारी हो।।
कैसियाँ सुखालियां रीतियां, कैसे सुखाले सवाल हो।
शब्द विचार सौखा है सवाल इन्सानों, हो गए दीन दयाल हो।।
जग दाता साडा फ़स्ट, फ़स्ट निकलो पकड़ो ओन्हां दी चाल हो।
फ़स्ट निकलो ते फेल न होवो, फेल होके न फिरो गंवार हो।।
उस दाते हनुमान जी दी नगर निवासी करन बढ़ाई हो।

श्री रामचन्द्र जी दी उपमा गा गा, त्रिलोकी है शरनाई हो।।

ध्वनि:-

सजनों फ़स्ट दी करो तैयारी।
फेल जेहड़ा हो गया, ओ उमरा राहवे भिखारी।।

सबकी जानकारी हेतु 'जीवन उद्देश्य के प्रति पुरुषार्थ/उद्यम की प्रेरणा' विषय के अंतर्गत इससे आगे बातचीत आगामी सप्ताह करेंगे।

दिनाँक 20 जनवरी 2019 का सबक़

जीवन उद्देश्य के प्रति पुरुषार्थ/उद्यम की प्रेरणा-3

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,
उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहो:-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत सप्ताह सजनों हमने जाना कि पुरुषार्थ निष्काम कर्म की प्रेरणा देकर व्यक्तिजनित दुर्वृत्तियों का निवारण कर अंतःकरण को विमल और विशुद्ध बनाता है। भोग, लोभ, मोह, लिप्सा, मद, क्रोध, क्रूरता और प्रमाद का अंत कर, संतोष, धैर्य, एकाग्रता, स्नेह, सदाशयता, निष्ठा, तपश्चर्या जैसी वृत्तियों से मनुष्य को सम्पन्न बना परिश्रम करने की प्रेरणा प्रदान करता है। इस तरह यह शक्ति, साहस, स्फूर्ति और उत्साह से इंसान को परिपूर्ण कर सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर चलने हेतु, कर्मठ यानि कार्य करने में कुशल, निपुण व वीर बनाता है। तभी तो ऐसे कर्मठ कर्मवीर व रणधीर पुरुषार्थी निर्भयता से इस कर्मभूमि पर विचरते हैं और जीवन के परम पुरुषार्थ की सिद्धि हेतु अपने व्यक्तिगत व पारिवारिक सुखों का त्याग कर, अपने प्राणों की बलि देने से भी नहीं सकुचाते यानि सद्‌गुणों से मंडित हो, सदाचार के रास्ते पर चलते हुए अपने जीवन के परम पुरुषार्थ को सहजता से सिद्ध कर पाते हैं। ऐसे

पुरुषार्थियों के ही संदर्भ में सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी गुरु गोबिन्द सिंह जी का उदाहरण देते हुए कहा गया हैः-

देखो गुरु गोबिन्द सिंह जी दे लाडले,
धर्म ते जानां वारियां ओ रौशन नाम करन।

आओ सजनों आज इसी परिप्रेक्ष्य में आगे जाने कि पुरुषार्थ की कसौटी क्या है और एक पुरुषार्थी इंसान कैसा होता है?

जानो सजनों चित्त की दृढ़ता, एकाग्रता, त्याग, धैर्य, निष्ठा, कर्त्तव्य के प्रति सचेष्टता, अंतर्मुखी वृत्ति अपनाते हुए निष्काम भाव से कार्य को अनवरत सम्पन्न करना ही परम पुरुषार्थ की कसौटी है। तभी तो पुरुषार्थी उत्साह व दत्तचित्तता से कठिन से कठिन कार्य को मन-वचन-कर्म द्वारा पूरा करने में ही अपने पुरुषार्थ की सफलता मानता है और अपने प्रयास में एक बार असफल होने पर फिर से प्रयास करता है। यही नहीं, वह तब तक प्रयास करता रहता है जब तक लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो जाती। इस तरह पुनः पुनः उद्यम करके किसी कार्य को पूरा करने में ही उद्यमशीलता की परीक्षा होती है और वह दृढ़ संकल्प शक्ति, आत्मसंयम, आत्मविश्वास और धैर्यपूर्वक एकनिष्ठ भाव से एकाग्रचित्त रहते हुए उस परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाता है।

इतना ही नहीं पुरुषार्थी मार्ग में अवरोध उत्पन्न करने वाली विघ्न-बाधाओं से भी नहीं घबराता अपितु वह तो बहादुरों की तरह जीवन की हर ऊँच-नीच यानि सुख-दुःख व विपत्तियों का सामना धैर्य व साहस से करते हुए सदा सत्कर्म ही करता है। इस प्रकार वह प्रतिकूल परिस्थितियों को भी अनुकूल बना लेता है और अपने पौरुष बल द्वारा प्रतिकूल भाग्य को भी सौभाग्य में बदल देता है। इसीलिये पुरुषार्थी को उत्तम-जन कहा गया है। इसके विपरीत जो भाग्य को सर्वोपरि मानकर पुरुषार्थ नहीं करता वह कायर, आलसी व कामचोर कहलाता है। वह तो किसी उत्तम कार्य में हाथ ही नहीं

लगाता जबकि उत्तमजन हाथ लगाये गये कार्य को पूरा करके ही दम लेते हैं। इस तरह उद्यम के अनुसार व्यक्ति का विभाजन उत्तम, मध्यम तथा अधम इन तीन कोटियों में किया गया है। इस विषय में सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ भी कहता है:-

तीन प्रकार के इन्सान होते हैं, उत्तम, मध्यम, मन्द अधम।
उत्तम इन्सान वह है जो खुशी नाल कारज करने लगे।।
मध्यम वह है जो कारज करने योग्य होता है,
पर खुशी के साथ न करे।
मन्द अधम वह है जो कहने पर भी नहीं चलता,
कहने पर भी नहीं चलता।
उत्तम दा सीस ताज सुकर्म, उत्तम दा अटल राज सुकर्म।।
सुकर्मों में उत्तम जकड़ता है दुःख क्लेश कष्ट में आवे।
तो भी सुकर्म वह छोड़ता नहीं।।
सच वर्ते सच वर्त वर्तावे, सुकर्मां नूं धारण कर,
फिर किसी से ओ डरता नहीं।
किस अग्गों सजनों ओ हथ जोड़े,
किस अग्गों टेके वह मत्था।।
किस अग्गों टेके वह मत्था।
जेहड़ा है नाम ओ शब्द है गुरु, किस अग्गों रखे ओ भेटां,
किस अग्गों रखे भेटां।।

इस तरह पुरुषार्थी ही अनथक परिश्रम व प्रयास के संयोग से ईश्वर का संग प्राप्त कर, सफलता प्राप्ति का अधिकारी बनता है। यह सफलता, नकारात्मक परिस्थितियों के विद्यमान होने के बावजूद भी, उसमें सकारात्मकता का संचार करती है यानि उसे शब्द विचार पर खड़ा रखती है और उसके लिए विकास के दिव्य द्वार खोलती है। ऐसे सजन के विषय में ही

सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

लोकी कैहंदे कलुकाल आके पसरिया जे आ आ आ आ।
ओ पसरे किस तरह जित्थे है शब्द विचार सजनों।
आप सजन ते सारा विस्तार सजन,
ओथे हनुमान जी होसन मददगार सजनों।।
ओ सजन पंजे विच किसे दे न आंवदा ए आ आ आ आ,
चाहे यत्न करो हज़ार सजनों।
ओ किसे दे घेरियां घिरदा नहीं, जैंदे संग राहवन बलधार सजनों।।

स्पष्ट है सजनों पुरुषार्थी ही परमार्थी धन का उपार्जन कर, सुख-समृद्धि व यश कीर्ति प्राप्त कर पाता है और समाज के लिये अनुकरणीय आदर्श स्थापित करता है। इस संदर्भ में इतिहास साक्षी है उन महान युग पुरुषों के जीवन चरित्र का जिन्होंने अपने पुरुषार्थ व पौरुष बल पर जन सामान्य के जीवन को प्रभावित किया और उन्हें उद्देश्यपूर्ण आदर्श जीवन जीने की प्रेरणा दी। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए ही सजनों पुराणों में कहा गया कि:-

पौरुष करता हुआ व्यक्ति सज्जनों के द्वारा प्रशंसित होता है
अतः सब प्रकार से पौरुष के लिए प्रयत्न करो।

सारतः सजनों जानो कि मनुष्य के लिए पुरुषार्थ/उद्यम के समान कोई बन्धु नहीं व आलस्य व प्रमाद से भारी कोई शत्रु नहीं। आशय यह है कि आलस्य एवं प्रमाद हमारे पुरुषार्थ में केवल गतिरोधक ही सिद्ध नहीं होते अपितु कार्य को पूरी तरह से अवरुद्ध भी कर देते हैं। इस संदर्भ में नीतिकथन भी यही कहता है कि:-

बुद्धिमान और उत्तम चरित्र वाले पुरुषार्थ को बड़ा मानते हैं
किन्तु पौरुष दर्शाने में अशक्त कायर भाग्य की उपासना करते हैं।

अतः इस बात को ध्यान में रखते हुए भाग्यवादी मत बनो अपितु दृढ़ इच्छाशक्ति की सहायता से प्रमाद, आलस्य, निष्क्रियता, अकर्मण्यता, भोगविलासिता, कामना, आशा-तृष्णा, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि मनोविकारों को त्याग कर स्वयं को शक्ति-सम्पन्न यानि पुरुषार्थी बनाओ। याद रखो पुरुषार्थ सौभाग्य को स्वयंमेव खींच लेता है इसलिए इसके बलबूते पर अपनी जड़ता, पतन व ह्रास के कारणों को खुद खोजकर, स्वयं में पाई त्रुटियों/दोषों/कमियों/अवगुणों का शोधन करो और ए विध् समभाव-समदृष्टि की युक्ति अनुसार आत्मसुधार कर ईश्वर रूप होने का सच्चा पौरुष दिखाओ। आप सब ऐसा करने में कामयाब हों इस हेतु हम तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार यही कहेंगेः-

(श्री साजन जी के मुख के शब्द)

महाबीर जी ने युक्ति बताई सजनों, ओ युक्ति तुआडे पास है।
पास फेल और फ़स्ट दा नतीजा निकलना,
ओ नतीजा तुआडे हाथ है।।
युग युग हनुमान जी दा स्कूल फ़स्ट निकलया,
सजनों तुसां वी होवो पास।
यत्न करो हुन फेल न होवो, स्कूल दी रख लवो लाज।।
जैंदा दाता ब्रह्मचारी और फ़स्ट होवे, ओहदा पुत्र क्यों न फ़स्ट होवे।
जेहड़ा पुत्र फेल होवे, ओ मौत दा क्यों न परवाना होवे।।
सजनों कौन फ़स्ट, कौन है सैकिण्ड, कौन थर्ड और कौन फेल होवे।
सतवस्तु में चौरासी दग्ध भस्म हो राहसी,
क्यों जीवन अपना ओ खोवे।।
युग युग फ़स्ट जेहड़े निकलदे आये, ओन्हां नूं सजनों याद करो।
ओन्हां दा ही नाम जप जप के, जीवन अपना ही आबाद करो।।
शहनशाह दे पुत्र हो के सजनों, क्यों बन बैठे भिखारी हो।
जीवन बना लौ अपना सजनों, फिर ओही है गद्दी तुम्हारी हो।।

शब्द:-

फ़र्स्ट कौन ते फेल कौन, इक जोत जगदी आई।
सजनों जोत नाल मेल जेहड़ा खा गया बिन सूरजों ओहदी रौशनाई।।
साडे शहनशाह हिन राजे जी।
सजनों ओहदे पुत्र हो के तुसां क्यों फ़कीरी पाई।।

सबकी जानकारी हेतु 'जीवन उद्देश्य के प्रति पुरुषार्थ/उद्यम की प्रेरणा' विषय के अंतर्गत इससे आगे बातचीत आगामी सप्ताह करेंगे।

दिनाँक 27 जनवरी 2019 का सबक़

जीवन उद्देश्य के प्रति पुरुषार्थ/उद्यम की प्रेरणा-4

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,
उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत सप्ताहों में सजनों हमने, जीवन के परम पुरुषार्थ क्या हैं व उसे सिद्ध कैसे करना है, इस विषय में जाना। इसके द्वारा सजनों हमें ज्ञात हुआ कि जीवन के इन परम पुरुषार्थों के निमित्त अविश्रान्त यानि अनथक क्रियाशीलता ही, अंतर्निहित पौरुष को, प्रदर्शित करने का यथार्थ लक्षण है। इसी के द्वारा व्यक्ति का शारीरिक उद्धार (यथा शरीर को स्वस्थ, बलवान व सुदृढ़ बना कर देह अभिमान से उबरना), मानसिक उद्धार (यथा सत्संग, भजन, आराधना, उपासना आदि द्वारा मन को उपशम कर उर्ध्वमुख बनाना) तथा आध्यात्मिक उद्धार (यथा भौतिक जगत से ऊपर उठकर प्रभु में तन्मय हो तद्नुरूप हो जाना) संभव है तथा इसी की सहायता से वर्तमान व भावी पीढ़ी को अकर्मण्यता की स्थिति से मोड़कर, जीवन के सद्मार्ग पर अग्रसर किया जा सकता है यानि लौकिक उन्नति के साथ साथ आत्मिक उन्नति भी की जा सकती है।

इस संदर्भ में सजनों जैसा कि हम सब जानते ही हैं कि मनुष्य का जीवन अल्प है और उसके दायित्व एवं प्राप्ति अनंत हैं। अतः यदि वह आज का काम आज पूर्ण कर लेता है यानि यथा समय ही, सम-संतोष-धैर्य-सच्चाई-धर्म अपनाकर, एक निगाह एक दृष्टि, एक दृष्टि एक दर्शन होने का परम पुरुषार्थ दिखाकर, जीवन का महान कारज सिद्ध कर लेता है तो कल नए कार्य को पूर्ण करने का अवसर पा सकता है यानि निष्काम भाव से दूसरों को जीवन के इस महान उद्देश्य के प्रति जाग्रति में लाने का परोपकार कमा सकता है। इसी से सजनों वास्तविक उन्नति का पथ प्रशस्त होता है। किन्तु यदि मनुष्य अविचार, आलस्य या लापरवाही वश आज का काम कल पर टालता रहता है तो वह न केवल वर्तमान में कार्य को उचित तरीके से सम्पादित करने का अवसर खो देता है अपितु अपनी उन्नति का मार्ग भी आप अवरुद्ध कर अधर्म के मार्ग पर प्रशस्त हो जाता है।

इस से सजनों स्पष्ट होता है कि अकर्मण्यता, आलस्य, त्रुटियाँ, असंतुष्टि, अधीरता, असत्य, अहंकार, अधर्म आदि, यह सब उन्नति के पथ की बाधायें हैं। इन बाधाओं को पार करना मनुष्य के लिये बहुधा कठिन हो जाता है क्योंकि वास्तव में नीचे से ऊपर उठना यानि अविचार छोड़ कर विचार पकड़ना, अधमता से उबर कर उत्तमता के चरमोत्कर्ष को छूना, मनुष्य को सहज प्रतीत नहीं होता। ऐसे में कई बार होता है कि मनुष्य ऊपर उठने का प्रयास करता है परन्तु पुरुषार्थ के अपेक्षित रूप में क्रियान्वित या फलित न होने के कारण यानि पिछली आदतों को न छोड़ पाने की विवशता व आत्मनिरीक्षण द्वारा पूर्ण रूपेण आत्मनियंत्रण व आत्मसुधार न कर पाने की स्थिति में वह शीघ्र ही हार खा निराश हो जाता है और उसे आत्मोन्नति का मार्ग कठिन प्रतीत होता है। परन्तु हक़ीकत में सजनों ऐसा नहीं है। यदि ध्यान से देखा जाए तो त्रुटियों का संशोधन कर यानि अंतर मन में घर कर गई खोट को दूर कर निर्विकार खालस सोना होने का नाम ही उन्नति है जिसके लिए सत्संग के दौरान हम जो भी सुनते हैं या सत्-शास्त्र के अध्ययन द्वारा जो भी पढ़ते व ग्रहण करते हैं उसे धारण कर अमल में लाना जरूरी होता है।

इस संदर्भ में सजनों समझो कि जिस प्रकार रंगमंच पर आकर, कोई नटी नृत्य करती है, कोई नट अपना करतब दिखाकर चला जाता है पर मंच पर प्रकाश ज्यों का त्यों बना रहता है, उसी प्रकार अंतर आत्मा में स्थित उस ज्ञान-स्वरूप प्रकाशात्मा के सम्मुख कोई भी चीज आये-जाये, कितना भी अज्ञान छा जाए, वे स्वयं प्रकाशित नित्य परमात्मा शरीर में विद्यमान होते हुए भी सदा उससे निर्लिप्त व विशुद्ध रहते हैं। इसी आत्म तथ्य का संज्ञान प्राप्त कर सजनों आत्म-स्वरूप हो जाना ही मानव जीवन की वास्तविक उन्नति का परिचायक है। अतैव, इस हेतु सजनों समभाव-समदृष्टि की युक्ति प्रवान कर पहले अपने को जानो, फिर अनवरत, अविराम, उद्यम दिखाकर, आत्मा में निहित परमात्मा के स्वरूप को पहचान कर, उसमें मिल जाओ। यही आत्मिक उद्धार की कसौटी है।

जानो चाव और उत्साह सजनों आत्मोन्नति के अनिवार्य तत्त्व हैं। यहाँ चाव से तात्पर्य प्रबल इच्छा उत्सुकता, तीव्र अभिलाषा, उत्कंठा, उमंग व सुखदायक मनोवेग से है तथा उत्साह से अर्थ मन की उस स्थिति व प्रसन्नता से है जो किसी आने वाले सुख/आनन्द को सोचकर होती है और मनुष्य को कार्य में प्रवृत्त करती है अर्थात् साहसपूर्ण आनन्द की उमंग का नाम उत्साह है। यह जोश, इच्छाशक्ति, हिम्मत, साहस व उत्प्रेरणा का ऐसा स्रोत है जो व्यक्ति को बारम्बार प्रताड़ित यानि हारने के बावजूद भी बार-बार उद्यम करने के लिए प्रेरित करता है फलतः व्यक्ति दृढ़ और सहनशील बन, आत्मविजयी होता है। सरल शब्दों में जानो कि यह अग्नि की चिंगारी के तुल्य है जो सुप्त प्रकाश को प्रस्फुटित करता है। इस प्रकार उत्साह ऐसा स्फुलिंग है जो मनुष्य जीवन को आलोकित करता है। इस तथ्य के दृष्टिगत सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

महाबीर जी दे चाह दे विच राहवां,
संसार दे विच न फस जावां।।
संसार मुहब्बतां लांवदा ए,

दासी दा दिल घबरांवदा ए।
इन्हां विच न मैं मुहब्बत लावां,
संसार दे विच न फस जावां।।
ए संसार दे विच फसांवदे नी,
आपे आपे ही प्रीतां पये लांवदे नी।
इन्हां कोलों बली निर्लेप राहवां,
संसार दे विच न फस जावां।।
संसार समुन्द्र डरांवदा ए,
भैणां नू तरना न आंवदा ए।
रघुनाथ जी दे मन्दिरां विच मैं जावां,
संसार दे विच न फस जावां।।
सानू नाम दा जादू पा दे बली,
रघुनाथ जी दे घर पहुंचा दे बली।
चित्त रघुनाथ जी दे चरणां दे विच लावां,
संसार दे विच न फस जावां।।
महाबीर जी रस्ता बताया ए,
रघुनाथ जी दे चरणीं बिठाया ए।
दिन रात मैं सेवा दे विच राहवां,
संसार दे विच न फस जावां।।
ए मन किसे पासे न जावे,
हरदम सांवले चरणां दे विच राहवे।
रघुनाथ महाबीर जी दा दीदार पावां,
संसार दे विच न फस जावां।।
हथ जोड़ के दासी पुकारदी ए,
दर्शन देंदे रहणा बलधार जी ए।
कई सूरजां दा सूरज मैं देखदी राहवां,
संसार दे विच न फस जावां।।

स्पष्ट है सजनों मानव के मन में उत्साह का उदय सरलता से नहीं होता। प्रायः संसारी विषयों, झंझटों, बातों व स्वभावों यानि फुरनों में गलतान होने वाले विकारग्रस्त व चिंतामग्न सजनों में लक्ष्य प्राप्ति का यह उत्साह जाग्रत नहीं होता। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

जिन्हुं मेरे मिलने दी होइए चाह,
स्वभावां वल्लों ख़्याल नूं लवे ओ हटा।
इलाही सूरत चमके ओ मेरी,
इंसान दर्शन लवे ओ पा इन्सान दर्शन लवे ओ पा।।

मुश्किल तो सजनों यह है कि शारीरिक स्वभावों में गलतान ऐसे सजनों के अन्दर यदि उत्साह उदित हो भी जाए तो उसकी निरंतरता कठिनता से बनती है यानि वह बीच में ही भंग हो जाता है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए सजनों इस चाह व उत्साह की निरंतरता बनाने हेतु सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ हमें सावधानी के रूप में बता रहा है किः-

आत्मिक ज्ञान दी जिस सजन नूं होवे चाह
उस सजन दी जिह्वा न झुखे, संकल्प न झुखे, झुखना है फुरना

जिह्वा का झुखना, संकल्प का झुखना सजनों यह स्थिति उत्साह भंग की होती है जिसे प्रायः हतोत्साह के नाम से जाना जाता है। यहाँ याद रखने की बात यह है कि उत्साह की निरंतरता बनाए रखने के लिए आत्मबल/आत्मिक शक्ति के साथ-साथ धैर्य का होना अति अनिवार्य है। ऐसे दृढ़ संकल्पी व्यक्ति में ही उत्साह स्वतः स्फूर्त होता है व उत्तम कोटि का कहलाता है। द्वितीय कोटि के उत्साह को प्रोत्साहन या प्रेरणा द्वारा उत्पन्न किया जाता है। यही प्रोत्साहन या प्रेरणा हम प्रायः सत्संग, सत्-शास्त्र के विचार, विभिन्न कार्यक्रमों के आयोजन व ध्यान कक्ष में होने वाली इन तमाम कक्षाओं के माध्यम से आपके अन्दर भरने का यत्न करते हैं जो आपको पीछे से धकेलने जैसा है। तृतीय

निम्न कोटि का उत्साह वह होता है जो कभी प्रकट नहीं होता यानि आलस्य व प्रमाद के कारण वह छिपा रहता है अथवा जो एक क्षण के लिए प्रकट होता है व दूसरे ही क्षण प्रतिकूल स्थिति आदि आने पर या दुराशा से घिर जाने पर मंद हो जाता है। ऐसे व्यक्ति उत्साह के अभाव में अधिकतर निरुत्साह, निराशा, अकर्मण्यता व चिंता से ग्रस्त हो जाते हैं।

उत्साह को जगाने के लिए कर्त्तव्याभिमुखता अनिवार्य है। ऐसा इसलिए क्योंकि जो प्रायः भाग्य पर आश्रित रहते हैं उनमें उत्साह बुझ चुका होता है इसलिए वे काल के प्रवाह में अपने आप को छोड़ देते हैं। फिर वह प्रवाह चाहे उन्हें जिधर भी प्रवाहित करे वह उधर ही बहते जाते हैं किंतु उत्साही उद्यम करता है, प्रयास करता है, साहस जुटाता है, पुरुषत्व को जगाता है, विचारों को ऊर्ध्वगामी बनाता है, संतोष-धैर्य को धारण करता है, अंतःकरण को शुद्ध बनाता है, व्यक्तित्व को ऊँचा उठाता है, और दृढ़तापूर्वक भाग्य को ललकारता हुआ सत्य-धर्म के निष्काम रास्ते पर चलने का पुरुषार्थ दिखाता है तथा इस प्रकार परोपकार करता हुआ भाग्य पर विजय प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार उत्साही के लिए संसार में कुछ भी प्राप्त करना दुर्लभ नहीं होता अपितु यह ही मन की निराशा व हतोत्साह को दूर भगा मनुष्य को क्रियाशील, कर्मठ, धीर, दृढ़चित्त, कर्त्तव्यपरायण व बलवान बनाता है। इसलिए तो कहा जाता है कि बिना उत्साह के किसी महान ध्येय की प्राप्ति संभव नहीं।

स्पष्ट है सजनों जब तक व्यक्ति के मन में आत्मोन्नति के प्रति चाव उत्पन्न नहीं होता तब तक उन्नति नहीं हो सकती। आत्मोन्नति का चाव मन में आत्मस्वरूप के प्रति उत्साह व उमंग जगाता है। इस उमंग व उत्साह से रोम-रोम में प्रसन्नता व प्रफुल्लता की लहर दौड़ती है और ख़्याल पूरे वेग से अपने सच्चे घर की ओर उड़ान भरता है। इस तरह आत्मेश्वर के प्रति विशुद्ध प्रेम व लगन बढ़ती है। इस लगन के अधिभूत हुआ सजन ध्येय पूर्ति के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा देता है यानि दृढ़ इच्छाशक्ति, अटूट श्रद्धा, निष्ठा, विश्वास, कठोर श्रम, संतोष, धैर्य, साहस और पूरे मनोयोग से क्रियाशील हो निष्काम कर्म

करने की कठोर तपश्चर्या करता है। इसी तथ्य के दृष्टिगत सजनों किसी ने ठीक कहा है:-

उत्साह की उमंग जिस प्रकार हाथ-पैर चलवाती है,
उसी प्रकार बुद्धि से काम कराती है।

इस तरह आत्मानुशासित हो व आत्मसंयमी हो वह विवेकशील, रास्ते में आने वाली हर विघ्न-बाधा को पार कर, सुख-दुःख, मान-अपमान, अमीरी-गरीबी, रोग-सोग आदि में सत्य-धर्म पर डटे रहने का व समभाव समदृष्टि पर अडिग बने रहने का पराक्रम दर्शाता है। फलतः बिगड़ा हुआ काम संवर जाता है और जीवन लक्ष्य प्राप्त होने पर जीव विश्राम को पाता है।

सबकी जानकारी हेतु सजनों आत्मोन्नति के विषय में इससे आगे बातचीत आगामी सप्ताह करेंगे।

दिनाँक 3 फरवरी 2019 का सबक़

जीवन उद्देश्य के प्रति पुरुषार्थ/उद्यम की प्रेरणा-5

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,
उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहो:-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत सप्ताहों में सजनों हमने जाना कि मनुष्य के मन में जब तक अपने जीवन के किसी भी लक्ष्य या परम पुरुषार्थ को सिद्ध करने के प्रति दिलचस्पी, सच्ची चाहना/चाव, अभीप्सा, रुचि, उमंग, उत्साह व उत्कंठा नहीं पैदा होती वह उसे कदापि प्राप्त नहीं कर पाता। लक्ष्य पाने की इस अभीप्सा के निरंतर जीवन्त, ज्वलन्त, जाग्रत और निष्काम रहने पर ही व्यक्ति अपने मन-चित्त को विमल यानि निष्कलुष कर पाता है और स्वतः ही उस शुद्ध चित्त वैरागी का ख़्याल व ध्यान, एकाग्र होकर सटीक लक्ष्य पर टिक जाता है। इस प्रकार मन-बुद्धि व चित्त के आधार स्वरूप परमात्मा में स्थिर हो जाने पर वह निरहंकारी मानव अपने जीवन संचालन हेतु उसी हृदय निहित आद् सत्य ज्ञान स्रोत से ही, सब कुछ प्राप्त करता है और उन्हीं आत्मविचारों अनुसार सही दिशा में क्रियावन्त हो जीवन के शाश्वत मूल्यों के प्रकाश में अपना सकारात्मक विकास कर एक आत्मतुष्ट व धीर बुद्धिमान व बलवान इंसान की तरह इस मायावी जगत में निर्लिप्तता से विचरता है। इस तरह वह

निष्पाप जीवन जीता हुआ अंत जोति नाल जोत हो जाता है अर्थात् आत्मपद की प्राप्ति कर लेता है। इस तथ्य के दृष्टिगत सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

जिन्हां नूं चाह होवे आत्मपद दी।
ओन्हां नूं ज्योति विच जोत मिलाय लिया।।

इसके विपरीत यदि व्यक्ति में लक्ष्य पूर्ति की सच्ची अभीप्सा नहीं होती तो मानव का जीवन अत्यन्त स्थूल व ऐन्द्रिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्र बन जाता है यानि वह एक ऐसा जीवन जीने का आदि हो जाता है जिसमें सिर्फ पेट की भूख, वासनापूर्ति और अनंत भौतिक क्षुधा की दौड़ लगी रहती है। इसी कारण वह परमार्थ के सद्-मार्ग से भटक स्वार्थी, आत्मकेन्द्रित और दानवीय प्रवृत्ति का इंसान बन जाता है। इस प्रवृत्ति की अधिकता उस अहंकारी को मोह-माया में उलझा, कामी, क्रोधी व लोभी बना, उसका मानसिक संतुलन बिगाड़ देती है। परिणामस्वरूप सांसारिकता का भाव अपनाना उस भ्रमित बुद्धि इंसान की विवशता हो जाती है। अतः मानसिक तौर पर अधम अवस्था को प्राप्त होने पर उस दुर्बुद्धि मानव का व्यावहारिक रूप पशु सम हो जाता है। यह अपने आप में सत्य-धर्म के निष्काम भक्ति भाव पर अटल रह सदाचारी इंसान बनने के स्थान पर असत्य व अधर्म का चलन अपना दुराचारी व व्यभिचारी इंसान बनने की बात होती है। जानो ऐसे यथार्थ से भटका हुआ इंसान अपने मन पर अंकुश खो बैठता है और जीवन में मनमत पर चलते हुए केवल पाप कर्म ही करता है। इसलिए तो जीवन का परम पुरुषार्थ हाथ से छूट जाता है और अंत वह जन्म मरण का अधिकारी बन आवागमन के चक्कर में फँस जाता है यानि जीवन का सारा खेल ही बिगाड़ बैठता है।

स्पष्ट है सजनों व्यक्ति का जीवन सद्-असद्, अच्छाई-बुराई, स्याह-शुक्ल और शुभ-अशुभ वृत्तियों का संगम है। भोगों और भौतिक आकर्षणों की तरफ आकर्षित होना, जीवन धारा के ऊपर से नीचे की ओर यानि पतन अवस्था की

ओर सहज बहाव, का लक्षण है, किंतु जीवन के महान लक्ष्य की ओर व्यक्तिगत दिलचस्पी, सच्ची चाहना व अभिरुचि, व्यक्ति की इस सहज दिशा को परिष्कृत करती है, उसमें निखार लाती है और उत्कर्ष की ओर ले जाती है। यही कारण है कि लक्ष्य व दिशा विहीन लोग परिस्थिति और परिदृश्यों को निराश मन से जस का तस स्वीकार कर लेते हैं किन्तु लक्ष्य की ओर केन्द्रित रुचि सम्पन्न लोग समभाव समदृष्टि के अनुशीलन द्वारा प्रसन्नचित्त होकर संतोष और धैर्य बल पर परिस्थिति और परिदृश्य को बेहतर दिशा में ले जाने के लिए स्वभावतः विवेकशीलता से लगनशील रहते हैं। इस तरह बुरी परिस्थितियों को भी अच्छा बना लेते हैं।

उपरोक्त विवेचना से दो बातें स्पष्टतः ज्ञात होती हैं-एक तो लक्ष्यहीन जीवन सुखहीन यानि दुःखी जीवन है दूसरा व्यक्ति का जैसा लक्ष्य होता है वैसा ही जीवन भी होता है यानि लक्ष्य के गुणों पर ही जीवन के गुण निर्भर करते हैं। इसलिए प्रत्येक का जीवन लक्ष्य उच्च, विशाल, उदार, उन्मुक्त और निष्काम होना चाहिए। ऐसा होने पर न केवल आपका जीवन आपके अपने लिए अपितु दूसरों के लिए भी बहुमूल्य हो जाता है। इस तथ्य के दृष्टिगत सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अध्याय में कहा गया है:-

मेरा असली मकसद बड़ा महान हो।
मान और अपमान मेरे लिये एक समान हों।
मेरे दिल में ऊँच नीच का कोई भेद भाव न हो।
प्रसन्नता और शोक मेरे लिये एक समान हों।
इस तरह मुझे नित्य प्रति प्रसन्नता मिलती रहे ।

इस संदर्भ में सजनों इस उच्च और महान लक्ष्य को आप पूर्ण रूप से तब तक प्राप्त नहीं कर सकते जब तक आप अपने अन्दर पूर्णता यानि संतोष के भाव को नहीं विकसित कर लेते। इस पूर्णता को प्राप्त करने के लिए सबसे पहला पग है अपने विषय में सचेतन यानि ज्ञानयुक्त होना यानि अपनी सत्ता, उस के विभिन्न अंगों यथा मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, शरीर आदि की अलग-अलग

क्रियाओं के विषय में सचेतन होना। यह क्रिया आपको ठीक ढंग से करनी आनी चाहिए। इस हेतु आपको अपने इन सब अंगों को एक दूसरे से अलग करके देखना और पहचानना सीखना चाहिए ताकि आप स्पष्ट रूप में यह पता लगा सको कि आपके अन्दर जो सब क्रियाएँ घटित होती हैं, आपको कर्म में प्रवृत्त करने वाले जो अनेक प्रकार के आवेग-प्रवेग प्रतिक्रियाएँ और परस्पर विरोधी इच्छाएँ आपके अन्दर उठती हैं, उन सबका मूल कहाँ पर है। याद रखो ऐसा सुनिश्चित करने पर ही आप निश्चित रूप से सुकर्म करने में प्रवृत्त हो सकते हो और अपने जीवन काल में सब कुछ धर्मसंगत करते हुए सत्य को प्रतिष्ठित कर श्रेष्ठ मानव बन सकते हो।

इस संदर्भ में याद रखो कि अभी हम अपनी सत्ता के एक नगण्य भाग के प्रति ही सचेतन हैं और अधिकांश भाग के प्रति अचेतन यानि ज्ञानशून्य हैं। यह अचेतनता ही हमें हमारी प्रकृति के अपरिमार्जित यानि मलिन भाग के साथ हमें नीचे की ओर बाँधे रखती है और उसके परिवर्तन या रूपांतर को रोकती है। इसी अचेतनता के कारण बुरी व विकारी दानवीय शक्तियाँ यथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या-द्वेष, घृणा, हिंसा आदि हमारे अन्दर घुस जाती हैं और हमें अपना गुलाम बनाती हैं। इसी कारण इतना सुन समझ कर भी हम अपने में परिवर्तन नहीं ला पाते। अतः अपने बारे में पूर्णतः सचेतन होना आवश्यक है यानि अपनी मूल सम प्रकृति और सद् प्रवृत्तियों के प्रति जाग्रत होना व उन पर स्थिरता से बने रहना अनिवार्य है।

इस हेतु विचार करना आरम्भ करो कि आप किस चीज़ को क्यों और कैसे करते हो, कैसा सोचते या अनुभव करते हो? सकारात्मक या नकारात्मक ? इसी तरह अपने प्रेरक भावों, आवेशों और अपनी गुप्त या प्रकट शक्तियों को जिनकी प्रेरणा से आप काम करते हो, समझो। इस तरह अपनी सत्ता के हर अच्छे या बुरे पहलू को अच्छी तरह समझो और जान लो। इस प्रयास द्वारा जब एक बार खरे और खोटे की परख यानि छान-बीन कर लोगे तब आप यह देखने में समर्थ हो जाओगे कि कौन सी बुरी शक्तियाँ आपको नीचे की ओर

खींचती हैं और कौन सी अच्छी शक्तियाँ ऊपर उठाने में मदद करती हैं। इस प्रकार जब उचित को अनुचित से, सत्य को असत्य से, दिव्य को अदिव्य से अलग करके जानने की कला में प्रवीण हो जाओगे तो दृढ़तापूर्वक सहर्ष बुराई को त्याग कर, अच्छाई को स्वीकार सकोगे।

याद रखना पग-पग पर अच्छाई और बुराई के मध्य का द्वन्द्व आपके सामने उपस्थित होगा और पग-पग पर आपको उन दोनों में से सही का चुनाव कर धैर्य व लगन के साथ हमेशा अपने लक्ष्य पर सतर्कता से डटे रहना होगा। अन्य शब्दों में चारों पहर जागते रहना होगा और दिव्य सद्गुणों को स्वीकार कर अदिव्य दोषों को नकारना होगा।

इस संदर्भ में सजनों अगर सचमुच उन्नति करना चाहते हो यानि अपनी सत्ता के सत्य को जानना चाहते हो तो जो कुछ भी उस सत्य का विरोध करता है यानि जो भी बुरा भाव/विचार/सुझाव उस सत्य को जानने में बाधक सिद्ध होता है, उसे अपने अन्दर से बाहर निकाल फैंको अथवा उनका परिशोधन कर उसे परिवर्तित कर लो। अन्य शब्दों में जो चीजें यानि अवगुण/बुराईयाँ आपकी सत्ता के सत्य का खंडन करती हैं, जो चीजें उसका विरोध करती हैं उन सबको तत्क्षण नष्ट कर दो। जानो यह सदा सचेतन अवस्था में बने रहने की बात है।

निःसंदेह सजनों यह एक श्रमसाध्य अनुशीलन है और इसके लिए बहुत अधिक लगन और सच्चाई से पुरुषार्थ करने की आवश्यकता है क्योंकि मनुष्य के स्वभाव की, विशेषकर उसके मन के स्वभाव की यह एक सहज प्रवृत्ति है कि वह जो कुछ सोचता, अनुभव करता, कहता और करता है, उसकी वह एक अनुकूल व्याख़्या दे डालता है। परन्तु जब हम बहुत अधिक सावधानी के साथ इन सब क्रियाओं को देखते हैं यानि सत्यता से आत्मनिरीक्षण करते हैं और अपनी कमियों को सच्चे दिल से खुद स्वीकार कर आत्मसंयम द्वारा उनका सुधार करने के प्रति सच्चा संकल्प ले लेते हैं, केवल तब ही हमारे अन्दर एक ऐसा विवेक उत्पन्न होता है जो कभी यथार्थ के विपरीत जाने की

भूल नहीं करता। अतः मन की बहानेबाज़ियों के चक्कर में फँसकर अपने जीवन का अनमोल वक्त बेकार मत करो अपितु जीवन के महान लक्ष्य की ओर उन्मुक्त उड़ान भरो। एक बार यह उड़ान भर ली तो फिर कदाचित् अतीत की स्मृतियों की ओर पीछे मुड़ कर मत देखो अपितु समस्त बन्धनों से मुक्त होकर स्वतन्त्रता से आगे बढ़ो। कहने का आशय यह है कि कल क्या थे इसकी चिन्ता न करो अपितु जो बनना चाहते हो, केवल उसी सत्य स्वरूप का चिन्तन करो और उसी में तन्मय हो जाओ। याद रखो जो सत्य को धारने के प्रति कृत संकल्प होता है और सत्य के लिए ही जीता है उसे बाहरी परिस्थितियाँ कभी प्रभावित नहीं करती। इसीलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

मैं सागर नाल जेहड़ा मिलना चाहवे, अक्ख मेरी नाल अक्ख मिलावे।
कंडे औझड़ इटां रोड़े नज़रों में न आवे, जो निगाह मेरे नाल लावे।।

अतः जीवन के सत्य को ग्रहण करने के लिए जो भी सद्ज्ञान प्राप्त करते हो, उसे व्यवहार में लाने की आदत डालो। ए विध् अपनी वृत्ति, स्मृति, बुद्धि व स्वाभाविक ताने बाने को निर्मल रखते हुए, उदार और निष्काम बनो। इस तरह जो अब तक नहीं कर पाए उसे चरितार्थ कर लोगे और विजय प्राप्त कर विश्राम पा लोगे।

आप सबकी जानकारी हेतु सजनों आगामी सप्ताह हम 'जीवन उद्देश्य के प्रति प्रेरणा' विषय के अंतर्गत जो भी पढ़ा समझा है उस के बारे में आत्मनिरीक्षण करेंगे।

दिनाँक 10 फरवरी 2019 का सबक़

आत्मनिरीक्षण

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,

उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों हम सबको याद होगा कि चालीस दिनों के गदे के यज्ञ के बाद जो मीटिंग हुई उसमें हमें चैत्र के यज्ञ तक आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई के प्रति अपनी परिपक्वता व कमज़ोरी की जाँचना कर, अपना नतीजा परखने के लिए कहा गया। हम समझते हैं कि इसके प्रति आप सबने सत्यता से आत्मावलोकन कर, अंतर्निहित सद्‌गुणों व कमियों/बुराईयों को समझ लिया होगा और निश्चित रूप से चैत्र के यज्ञ पर फर्स्ट का नतीजा सुनाने हेतु उन कमियों या बुराईयों को दूर कर, समभाव-समदृष्टि के सबक़ का अनुशीलन करते हुए, परस्पर सजन भाव का व्यवहार करने के प्रति दृढ़ संकल्प हो गए होंगे। सजनों याद रखो सालानी परीक्षा में अव्वल का नतीजा सुनाने हेतु अभी कुछ समय बाकी है यानि अभी भी आपके पास अंतर्निहित कमियों/दोषों/बुराईयों व गलतियों का सुधार करने का मौका है। अतः वक्त की नजाकत को समझते हुए, तत्क्षण ही नकारात्मकता त्याग सकारात्मकता अपनाने का यानि बुरे से अच्छे इंसान बनने का अदम्य पुरुषार्थ दिखाओ। इस संदर्भ में हम आप सबसे

प्रार्थना करते हैं कि इस शुभ कार्य की सिद्धि के निमित्त पुनः अपना विधिवत् आत्मविश्लेषण करो और समय रहते ही आत्मनियंत्रण रखते हुए अपने भाव-स्वभाव, वृत्ति-स्मृति, बुद्धि सबको निर्मल बना आत्मसुधार कर लो।

इसी परिप्रेक्ष्य में आओ सजनों अब गत सप्ताहों में 'जीवन उद्देश्य के प्रति पुरुषार्थ/उद्यम की प्रेरणा' के अंतर्गत जो भी हमें पढ़ाया व समझाया गया है उसको आत्मसात् करने में हम कितने कामयाब हुए हैं, उस के बारे में सच्चे दिल से आत्मनिरीक्षण करते हुए अपनी उन्नति का संज्ञान लेते हैं:-

1. क्या जीवन लक्ष्य प्राप्ति हेतु यानि आत्मज्ञान प्राप्त कर निज उद्धार करने हेतु हम मनोयोगपूर्वक, अंतर्निहित समस्त शक्तियों द्वारा निरंतर पुरुषार्थ/उद्यम करने का साहस जुटा पा रहे हैं?

2. क्या आत्मोन्नति करने हेतु सत्-शास्त्र के अध्ययन द्वारा हम जो भी पढ़ते व ग्रहण करते हैं, उसे धारण कर अमल में लाने का परम पुरुषार्थ दिखा पा रहे हैं? यानि क्या हम शास्त्र का मनन व विचार करते हुए ध्यान द्वारा सत्य को जानने का प्रयास करते हैं और उसके प्रति पूर्णता समर्पित हो, विपरीतता व विषमता के मध्य भी उस पर डटे रहने का अभ्यास करते हैं?

3. क्या आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने हेतु हम अपने हृदयगत वातावरण को आद् अक्षर के अजपा जाप द्वारा निर्मल व विशुद्ध बना पा रहे हैं?

4. कहीं संसारी विषयों, झंझटों, बातों व शारीरिक स्वभावों यानि फुरनों में गलतान होने के कारण जीवन लक्ष्य को पाने का उत्साह बार-बार भंग तो नहीं हो जाता? यदि ऐसा ही है तो जान लो कि जब तक व्यक्ति के मन में आत्मोन्नति की सतत् चाहना यानि दिलचस्पी उत्पन्न नहीं होती तब तक उन्नति नहीं हो सकती।

5. यह जानने के बावजूद भी कि अनथक क्रियाशीलता ही शारीरिक, मानसिक व आत्मिक उद्धार द्वारा अतर्निहित पौरुष को, प्रदर्शित कर जीवन

लक्ष्य सिद्ध करने का अमोघ साधन है, कहीं हम अविचार, आलस्य, अकर्मण्यता या लापरवाही वश आज का काम कल पर टालने के कारण, जीवन के परम पुरुषार्थों को यथासमय सिद्ध करने के प्रति हार तो नहीं खा रहे?

6. क्या हम मिथ्यात्व/नश्वरता के भाव को छोड़, अपनी सुरत को निरंतर नित्य शब्द ब्रह्म के संग जोड़े रख, नित्यता के भाव को धारण कर यथार्थपूर्ण जीवन जीना आरम्भ करने में सक्षम हो पा रहे हैं यानि कहीं हम किसी के बहकावे में आकर यानि जीवन की सुख-दुःख रूपी परिस्थितियों में बहककर संसार/नश्वरता को अपनाने की भूल तो नहीं कर बैठते?

7. क्या हम अपनी सत्ता के सत्य को जानने हेतु जो कुछ भी उस सत्य का विरोध करता है यानि जो भी बुरा भाव/विचार/सुझाव उस सत्य को जानने में बाधक सिद्ध होता है, उसे अपने अन्दर से बाहर निकाल फैंक अथवा उसका परिशोधन कर उसे परिवर्तित कर पा रहे हैं? यानि क्या हम जो चीजें यानि अवगुण/बुराईयाँ आपकी सत्ता के सत्य का खंडन करती हैं, जो चीजें उसका विरोध करती हैं उन सबको तत्क्षण नष्ट कर पाने में सक्षम हो पा रहे हैं?

8. कहीं मन की भोग करने की वृत्ति या बहानेबाज़ियों के चक्कर में फँसकर हम अपने जीवन का अनमोल वक्त बेकार तो नहीं कर रहे? यदि ऐसा ही है तो अपने जीवन के घातक आप मत बनो अपितु जीवन के सत्य को ग्रहण करने के लिए जो भी सद्ज्ञान यहाँ से प्राप्त हो रहा है, उसे व्यवहार में लाने की आदत डालो।

9. क्या हम बहादुरों की तरह जीवन की हर ऊँच-नीच यानि सुख-दुःख व विपत्तियों का सामना धैर्य व साहस से करते हुए, सदा सत्कर्म करने का उद्यम दिखा पा रहे हैं यानि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सत्य-धर्म पर डटे रह, ईश्वर रूप होने का सच्चा पौरुष दिखा पा रहे हैं?

10. क्या हम आत्मोद्धार की प्रबल चाहना, वैराग्य, अनुशासन और सतत्

अभ्यास के बल पर यानि अपने सहायक स्वयं बनकर, अपने आश्रय पर स्वयं, समभाव-समदृष्टि की युक्ति प्रवान कर, आत्मविश्वास के साथ ऊपर उठते हुए, जीवन के तमाम झमेलों, विपरीत परिस्थितियों व अंतर्निहित बुराईयों पर विजय पाने का साहस जुटा पा रहे हैं? यदि हाँ तो जान लो यही मोक्ष यानि सर्वश्रेष्ठ मुक्ति है व परम संतोष प्राप्ति का अमोघ साधन है।

सजनों आज आत्मनिरीक्षण करने के पश्चात् आपको यह बात भली-भांति समझ आ गई होगी कि अब तक आपने अपने दोषों को दूर कर स्वयं को कितना सुधारा है। कहने का आशय यह है कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित शब्द ब्रह्म विचारों को आत्मसात् कर, लोकमंगल की भावना से परमेश्वर के हुक्म अनुसार अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए, आप अपना आत्मिक उत्कर्ष करने में कितने कामयाब हुए हो, इसकी जानकारी आपको प्राप्त हो गई होगी।

इस संदर्भ में सजनों यदि अपेक्षित सुधार में कहीं कोई कमी अनुभव हो रही है तो भी घबराओ नहीं अपितु आत्मविश्वास रखो कि आप स्वयं आत्मसंयम द्वारा अपना उद्धार करने में सक्षम हो। इस विषय में सदा इस कथन को याद रखो कि 'आत्मविश्वास की नींव पर बनी सकारात्मक सोच की इमारत कभी ढह नहीं सकती'। अतः आत्मबोध के मार्ग में यदि कोई बंधन, बाधक सिद्ध हो भी रहा है तो भी यह मानते हुए कि 'वास्तविक शक्ति तो हमारी आत्मा में है', आत्मबल के प्रयोग द्वारा हर बंधन से मुक्त हो अपने लक्ष्य को प्राप्त कर जीवन आनन्द से बिताओ। इसी संदर्भ में अब ध्यान से सुनो कि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ क्या कह रहा है:-

(सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के मुख के शब्द)

कवित्तः-

हिम्मत दिखाई ओ जाओ हिम्मत बधाई ओ जावो।
हिम्मत न हारनी ओ बेटा, हिम्मत बढ़ाई ओ जावो।।

विचार पकड़ना सिखाई ओ जाओ, सत बोलना समझाई ओ जावो।
सच होवे ज़बान ओ बेटा, धर्म दा रस्ता बतलाई ओ जावो।।
सजनां नूं एकता वी दिखाई ओ जावो।
इक निगाह एक दृष्टि ते हिम्मत बढ़वाई ओ जावो।
नीतियां ते चलने दा तरीका ओ बेटा, एहो सजनां नूं समझाई ओ जावो।।
हिम्मत बढ़ाई ओ जावो, एहो तरीका सारी विश्व नूं सुनाई ओ जावो।
हिम्मत है जगजीत मीतां दी ओ मीत बेटा।
ए सौखा तरीका दे के सब नूं हर्षाई ओ जावो।।

(अब श्री साजन जी सजनों को कह रहे हैं)

हिम्मत जेहड़ा लड़ावे इन्सान, ओ असलियत दी कर लवे पहचान।
इन्सान हो तो इन्सानी दिखाओ, ओ सजनों हिम्मत है जे बड़ी महान।।
इन्सान हो तो इन्सानी दिखाई ओ जावो, ओ सजनों हिम्मत बढ़ाई ओ जावो।
फिर दिव्य दृष्टि दा सबक लै के, मेल महाराज नाल खाई ओ जावो।।
हिम्मत है जे ओ जैंदे पास, हिम्मत है जे ओ अपना आप प्रकाश।
ओ प्रकाश दिखाई ओ जावो, त्रिकालदर्शी नाम कहाई ओ जावो।।
फिर रूप रंग न रेखा कोई, निर्वाण दे अन्दर प्रकाश सोई।
बिन सूरजों प्रकाश आद अन्त, प्रकाश ही प्रकाश दिखाई ओ जावो।।

शब्दः-

जेहड़ा प्रकाश है जे मन मन्दिर, ओही प्रकाश सारे जग अन्दर।
एक निगाह एक दृष्टि, ओ एक दर्शन ओ एक दर्शन।।

सजनों आप सभी एक निगाह एक दृष्टि, एक दृष्टि एक दर्शन में स्थित हो, चैत्र के यज्ञ पर फर्स्ट का नतीजा सुनाओ, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

दिनाँक 17 फरवरी 2019 का सबक़

विवेक सम्पन्न होकर जीवन पथ पर प्रशस्त होने का प्रोत्साहन

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,
उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और
निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों अभी तक हमने इस समभाव-समदृष्टि के स्कूल में जो भी जाना उससे स्पष्टतः ज्ञात होता है कि जीवन के दो रास्ते हैं। एक अविचारयुक्त अविवेक का मार्ग है, दूसरा विचारयुक्त विवेक सम्पन्न मार्ग है। एक सच-झूठ की परख किए बगैर ही मनमत अनुसार अपनी धारणा निर्मित कर यानि दुर्बुद्धि बन संसार में फँसने का मार्ग है, दूसरा स्थिर बुद्धि द्वारा संसार से छूटने का मार्ग है। एक कवलड़ा यानि कठिनाईयों व ठोकरों भरा रास्ता है, दूसरा सवलड़ा व सुखदायक विजय पथ है। एक क्रिया कारक और भूल का मार्ग है जो नरक की ओर जाता है और दूसरा स्वतः सिद्ध निज परमात्म स्वरूप के यथार्थ ज्ञान का मार्ग है जो सीधा परमधाम की ओर जाता है। इस तरह दोनों मार्ग परस्पर जुदा हैं तथा इनमें से उत्तम विचारयुक्त विवेक सम्पन्न मार्ग पर चलने वाला ही आत्मस्वरूप हो अपने मन सहित इस जगत पर विजय प्राप्त कर पाता है जैसा

कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी कहा गया है:-

अव विचार जेहड़ा चलदा है सजन, चार चुफेर हार ओ खांदा है।
विचार है जित तुम्हारी ओ सजनों, हर पासियों ओ जितदा रैहंदा है।
अव विचार है जे कवलड़ा रस्ता, हर पासियों ओ ठोकरां खांदा है।
विचार है जे सवलड़ा रस्ता, सदा ही ओ जितदा रैहंदा है।

इस विचारयुक्त मार्ग पर निर्विघ्नता से प्रशस्त होने के संदर्भ में निःसंदेह सजनों हम मानते हैं कि हम सबको उस समय काल में यह अनमोल मानव चोला मिला है जबकि इस संसार में चहुं ओर कलियुग के दुष्प्रभाववश घोर अज्ञान व अंधकार का कलुषित वातावरण फैला हुआ है। पर यहाँ समझने की बात यह भी है कि जहाँ एक तरफ इस संसार के रंगारंग नानाविध् प्रलोभनों की प्राप्ति के प्रति इंसान के ख़्याल व ध्यान को आकृष्ट कर उसे भ्रष्टाचारी, दुराचारी, अत्याचारी व व्यभिचारी बनाने हेतु स्वार्थपरता का बोलबाला है वहीं दूसरी ओर परम पिता परमात्मा की अपार कृपा के तहत्, इन प्रलोभनों के दुष्प्रभाव से विमुक्त रह उसे सदाचारी बनाने हेतु, शब्द ब्रह्म विचारों के रूप में समस्त वेद-शास्त्रों में विदित सज्ञान भी तो उसके पास उपलब्ध है। वह क्यों नहीं इस उपलब्ध ज्ञान का सदुपयोग कर अपने आप को सद्मार्ग पर यानि विचारयुक्त सवलड़े रास्ते पर चलने के लिए बाध्य करता? क्या इसका कारण जानते हो?

मौन।

इसका कारण एक ही है कि वह भले-बुरे, सत्य-असत्य का ज्ञान प्रदान कराने वाली, ईश्वर प्रदत्त अपनी विशिष्ट शक्ति यानि विवेकशक्ति के इस्तेमाल के प्रति पूर्णता अनभिज्ञ होता है इसलिए वह क्या गलत यानि अहितकारी है व क्या सही यानि हितकारी है, उस चयन प्रक्रिया के दौरान धोखा खा जाता है और असत्य को ही सत्य मानकर तद्नुरूप जीवन शैली अपना बैठता है। ऐसे में सजनों चूंकि माता-पिता, समाज, स्कूल-कालेज, वर्तमान शिक्षण प्रणाली

भी उसको इसके प्रति सचेतन नहीं करती इसलिए उसका उत्तरोत्तर नैतिक पतन होता जाता है और अच्छा होते हुए भी वह बुरा बन जाता है।

उपरोक्त तथ्य से सजनों इंसान के जीवन में विवेकशक्ति की महत्ता स्पष्ट होती है और ज्ञात होता है कि एक इंसान विवेकशक्ति के बलबूते पर ही इस दृश्यमान जगत तथा अदृश्य आत्मा में भेद कर, मायावी यानि बाह्य रूप से वास्तविकता को पृथक कर, सत्यज्ञान प्राप्त कर सकता है। अन्य शब्दों में इसी शक्ति के प्रयोग द्वारा ही वह सत् और असत् का ठीक और स्पष्ट ज्ञान प्राप्त कर इस विषयी जगत के नकारात्मक दुष्प्रभावों से विमुक्त रह सकता है और वेद शास्त्रों में विदित ब्रह्म विचारों को धारण कर, एक विचारवान, न्यायशील व आत्मविश्वासी इंसान की तरह, निरासक्त जीवन जीने के योग्य बन, अपने जीवन का हर धर्म-कर्म अकर्त्ता भाव से सम्पन्न करते हुए कर्मगति से मुक्त रह सकता है और मानव रूप में अपनी सर्वोत्कृष्टता सिद्ध कर सकता है।

इस बात के दृष्टिगत सजनों हमें समझना है कि आज के इस अज्ञानमय कलुषित वातावरण में समाज में दूषित व भ्रष्ट आचार-विचार-आहार व व्यवहार के रूप में जितनी भी अविचारयुक्त जीवन शैली प्रचलित है, उस नकारात्मकता को हमने बिना परखे नहीं ग्रहण करते जाना अपितु उसे ग्रहण/धारण करने से पूर्व, वेद-शास्त्रों में विदित ब्रह्म विचारों के सुदृढ़ आधार पर व अपनी विवेकशक्ति के प्रयोग द्वारा सर्वप्रथम हमने यह जानना है कि उसमें से क्या ग्रहण/धारण करने योग्य है व क्या नहीं। याद रखो इस प्रकार अपने विवेक द्वारा विधि/नियम/रीति के रूप में माने जाने योग्य भाव/वस्तु/ज्ञान को ग्रहण/धारण करने वाला ही विचारवान व गुणशील माना जाता है। ऐसे विचारवान गुणशील व्यक्ति में ही सद्गुणों को ग्रहण कर सदाचारी बनने की प्रवृत्ति लक्षित होती है इसके विपरीत दोषपूर्ण व्यक्ति में दोषों को ग्रहण कर दुराचारी बनने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। कहने का आशय यह है कि अपना जीवन चरित्र उज्ज्वल व परम पवित्र बनाने हेतु हमें कुछ भी ग्रहण/धारण करने से पूर्व उसकी सकारात्मकता व नकारात्मकता को परख सदा सत्य धारणा ही सुनिश्चित करनी है। मात्र इतनी सी सावधानी लेने से वृत्ति-स्मृति-

बुद्धि व भाव-स्वभाव रूपी बाणा निर्मल हो जाएगा **व हम सत्-वस्तु धारण कर सचखंड बसने वाले परमेश्वर से नाता जोड़ने में सफल हो जाएंगे। इस तरह सत्-वादी बन सबके कल्याण के निमित्त निष्काम भाव से परोपकार के काम करेंगे और** हमारे लिए जीवन लक्ष्य प्राप्ति का कार्य सहज हो जाएगा।

यह बात जानने समझने के पश्चात् सजनों अब आप भी ऐसा ही गुणवान व सदाचारी इंसान बनने हेतु अंतर्निहित उस विशिष्ट विवेकशक्ति के आधार पर यह जाँचना करके बताओ कि इन्सान होने के नाते क्या आपके लिए:-

1. आलस्य या प्रमादग्रस्त हो जीवन का अनमोल समय व्यर्थ गँवाना उचित है या जीवन के परम पुरुषार्थों की सिद्धि के निमित्त उद्यम दिखा अपना जीवन बनाना उचित है?

2. अपने जीवन के महान प्रयोजन की सिद्धि हेतु कवलड़े व ठोकरों भरे स्वार्थपर अविचार युक्त रास्ते पर चलना उचित है या फिर परमार्थ के सवलड़े विचार युक्त मार्ग पर चलना उचित है ?

3. भौतिकवादी संस्कृति का समर्थन कर व जगतीय विषयों का रसिया बन यानि बहिर्मुखी होकर, अंधाधुंध प्रतिस्पर्धा व प्रतिद्वंद्वता की होड़ में परस्पर लड़ते-झगड़ते हुए द्वि-द्वैत, वैर-विरोध, तेरी-मेरी, ईर्ष्या-द्वेष, घृणा-हिंसा जैसे दानवीय/शारीरिक भाव-स्वभाव अपनाने उचित हैं या फिर अंतर्मुखी होकर विरासत में मिली आत्मिक ज्ञान की संपदा का प्रयोग करते हुए अपने अजर, अमर, अविनाशी स्वरूप में स्थित रह, आत्मीयता युक्त भाव-स्वभाव अपनाने उचित हैं?

4. मनमत के वशीभूत हो, संकल्प-विकल्प की दासता स्वीकार यानि पराश्रित हो, झुखते-रोते हुए जीवनयापन करना उचित है या फिर गुरुमत यानि ईश्वरीय हुक्म की पालना द्वारा, संकल्प कुसंगी पर फतह पा, स्वतन्त्रता से सदा अपना संचालन आप करते हुए सदा प्रसन्नचित्त बने रहना उचित है?

5. शारीरिक स्वस्थता के दृष्टिगत जिह्वा के स्वादवश, राजसिक व तामसिक आहार से युक्त असंतुलित, अपौष्टिक आहार व माँसाहारी व नशीले पदार्थों का सेवन करना उचित है या फिर शरीर को बलिष्ठ करने वाले संतुलित, पौष्टिक सात्विक आहार का सेवन करना उचित है?

6. मानसिक स्वस्थता को ध्यान में रखते हुए सारा दिन व्यर्थ की सोचों व नकारात्मक बातों में बिताना उचित है या फिर मूलमंत्र आद् अक्षर यानि प्रणव के अजपा जाप द्वारा प्राप्त हुए शब्द ब्रह्म विचारों का सेवन करना उचित है?

7. दूसरों को दुःख पहुँचाने वाले कटु, अहितकारी, असत्य वचन बोलना व निंदा चुगली करना उचित है या फिर अपनी जिह्वा को इन सबसे स्वतन्त्र रखते हुए मधुर, हितकारी, सत्य सार्थक वचन बोलना उचित है?

8. स्वार्थपरता के नियम अनुसार, अपने मन की तुच्छ इच्छाओं व कामनाओं का गुलाम हो, असंतोषी व अधीर बन, छल-कपट-चातुर्य युक्त मिथ्या आचरण करते हुए, विषय विकारी बनना उचित है या फिर एक निष्कामी की भांति, कामनाओं और इच्छाओं में फर्क कर, जितना कुशलता से जीवनयापन हेतु आवश्यक है उसकी प्राप्ति हेतु यत्नशील हो संतोषी व निर्विकारी बने रहना उचित है?

9. जीवन की कठिनाईयों और कठोर परीक्षाओं से हतोत्साहित हो, कायर व डरपोक इंसान की तरह कुकर्म-अधर्म का रास्ता अपनाना उचित है या फिर एक धीर, वीर व साहसी आत्मविश्वासी इंसान की तरह बुद्धिमत्ता से इनका सामना करते हुए सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर डटे रहना उचित है?

10. सर्व प्रचलित अलगाववाद व स्वार्थपरता के प्रतीक मनगढ़ंत, कर्मकांड व आडम्बरयुक्त भक्ति भावों में फँस कर तूं-मैं का, बड़े-छोटे का, मत-मतांतरों का, धर्मों-पंथों की भिन्नता का सवाल खड़ा कर दंगे-फसाद करवाना उचित है या फिर समभाव-समदृष्टि के सबक़ अनुसार सबको एक समान समझते हुए व एक ही नज़र से देखते हुए, मानवता अनुरूप परस्पर सजन भाव का

व्यवहार करना उचित है?

11. पाश्चात्यवादी आधुनिक संस्कृति का समर्थन करते हुए व नास्तिकवादी भौतिक प्रवृत्ति का अनुकरण करते हुए, वाद-विवाद, तर्क-वितर्क में उलझ दुराचारी इंसान बनना उचित है या फिर आत्मा और परमात्मा की शाश्वतता, शाश्वत जीवन और शाश्वत मूल्यों में विश्वास, नैतिक व्यवस्था को भौतिक व्यवस्था से उच्चतर मानने में विश्वास तथा इन विश्वासों के अनुसार आचार-व्यवहार करते हुए सदाचारी इंसान बनना उचित है?

सजनों उपरोक्त समस्त बिन्दुओं पर सूक्ष्मतया अपनी जाँचना करने से ज्ञात होता है कि दो तरह के इंसान होते हैं, एक अच्छा व दूसरा बुरा। दोनों का अपना-अपना स्वाभाविक रूप होता है। इस संदर्भ में आत्मनिरीक्षण कर अपने आप को परखना है कि अभी तक हम किस तरह के इंसान बन चुके हैं ...अच्छे या बुरे? यदि लगे कि बुरे इन्सान बन चुके हैं तो स्वयं में स्वाभाविक परिवर्तन लाकर अच्छा इंसान बनना अनिवार्य है। अन्य शब्दों में एक मानव होने के नाते हमारे लिए हर हाल में ईश्वर प्रदत्त विवेकशक्ति का इस्तेमाल करते हुए संतोष, धैर्य जैसे दिव्य गुण अपनाकर, सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर सुदृढ़ता से डटे रहते हुए, परोपकार कमाना ही उचित है। सजनों यदि हम सुनिश्चित रूप से इस प्रयोजन में सफल होना चाहते हैं तो जानते हो इसके लिए विशेषतः हमें क्या करना होगा?

मौन।

इस हेतु हमें नकारात्मक सोचना, नकारात्मक बोलना व नकारात्मक कर्म करना बंद करना होगा व सकारात्मक यानि अच्छा-अच्छा सोचना, अच्छा-अच्छा बोलना व अच्छा-अच्छा ही करना शुरु करना होगा। यहाँ स्पष्ट कर दें कि नकारात्मक चलन को मानव-धर्म के विपरीत होने के कारण, अधर्म युक्त, अविचारी, विष तुल्य व सामाजिक रूप से अस्वीकार्य (यानि न मानने योग्य) तथा निंदनीय माना जाता है। इसके विपरीत सकारात्मक चलन को मानव

धर्म के अनुकूल होने के कारण, विचार व धर्म युक्त अमृत तुल्य व सर्व सामान्य रूप से स्वीकार्य और यश कीर्ति का प्रतीक माना जाता है। जानो जहाँ नकारात्मक चलन आत्म विस्मृति का सूचक है वहीं सकारात्मक चलन आत्म स्मृति में बने रहने का द्योतक है। अतः केवल सकारात्मक चलन को अपना कर ही इंसान स्थिर बुद्धि बना रह सकता है और विवेकशक्ति के प्रयोग द्वारा अपना जीवन सहजता से सकारा कर, इस जगत में अपना नाम रोशन कर सकता है।

इस तथ्य के दृष्टिगत सजनों हमारे लिए बनता है कि हम आज तक स्वयं द्वारा अपनाई गई विचार प्रक्रिया का गहराई से विश्लेषण करें। फिर यदि लगे कि हम किसी कारणवश नकारात्मकता अपना चुके हैं तो अविलम्ब अपने ख़्याल को इस विष तुल्य चलन से उबार कर सकारात्मक विचारों पर केन्द्रित करें। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि इंसान जिस प्रकार की विचार प्रक्रिया अपनाता है उसका ख़्याल वहीं केन्द्रित हो जाता है और तद्नुरूप ही उसकी अच्छी या बुरी स्वाभाविक बनत बनती है। कहने का आशय यह है कि यदि अच्छा सोचोगे व अच्छों का संग करोगे तो अच्छे बनोगे तथा यदि बुरा सोचोगे व बुरों का संग करोगे तो बुरे ही बनोगे। इस तरह अच्छा या बुरा बनना यह स्वयं आप द्वारा चयन की गई विचार प्रक्रिया पर ही निर्भर करता है।

इस संदर्भ में सजनों अंततः हम तो यही कहेंगे कि अगर सत्य-धर्म के पथ पर निष्काम भाव से स्थिर बने रह परोपकार प्रवृत्ति में ढल, श्रेष्ठ मानव बनने का निश्चय लिया है तो बिना किसी तर्क के सकारात्मकता को अपना लेना। यह सकारात्मकता आपको प्रणव मंत्र यानि मूलमंत्र आद् अक्षर के साथ अजपा जुड़ने पर अंतरात्मा से प्राप्त होगी **जिसके लिए अपने ख़्याल को आत्म यथार्थ में ठहराना होगा यानि ध्यान स्थिर करना होगा।** यही नहीं यह सकारात्मकता ही शब्द ब्रह्म विचारों के रूप में समस्त वेद शास्त्रों में व सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित है। अतैव अध्ययन द्वारा अपने मन में उन परम श्रेष्ठ विचारों को ग्रहण कर उनमें मनन करने की दिलचस्पी पैदा कर, आत्मसात् करो और उसके आधार पर ईश्वर प्रदत्त विवेकशक्ति का उचित ढंग

से प्रयोग करने की कला में प्रवीण बनो। निश्चित ही सजनों यदि यह कर लिया तो जो भी धारोगे केवल सत्य ही धारोगे व सदा विचारवान व सत्यवान बने रहोगे। इस तरह अपने यथार्थ की स्मृति बनी रहेगी और आपके लिए इस मिथ्या जगत में मनुष्यता अनुरूप धर्मसंगत शास्त्रविहित कर्म करते हुए सत्य को प्रतिष्ठित करना सहज हो जाएगा और परमेश्वर के सपुत्र कहला परमधाम के अधिकारी बनोगे। **ऐसे बनो हाँ ऐसे बनो और ऐसे बनकर रौशन अपना नाम करो।**

दिनाँक 24 फरवरी 2019 का सबक़

आशा-तृष्णा

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,

उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों इस संसार में जितने प्राणी हैं, वे सब सुख पाना चाहते हैं। सुख मिल जाए इसलिए अधिक से अधिक सुख की सामग्री इकट्ठी करते हैं। इस संदर्भ में जितना ही उन्हें बाहरी जगतीय वस्तुओं व इन्द्रिय विषयों में सुख दिखता है, उतना ही उनका लोभ-लालच बढ़ता है और जितना लालच बढ़ता है उतना ही मन का विक्षेप यानि इधर-उधर भटकन व भोग प्रवृत्ति बढ़ती है। इसलिए तो वर्तमान में उपलब्ध सुख-संसाधन उन्हें सुखी नहीं बना पाते तथा और... और... और... प्राप्ति की आकांक्षा यानि आशा-तृष्णा उन्हें और दुःखी बना देती है। परिणामतः अज्ञानी मानव क्षण-प्रतिक्षण यानि बात-बात में हर्ष-सोग का अनुभव कर अपने को कभी सुखी तो कभी दुःखी समझने लगते हैं और आजीवन इसी सुख-दुःख की पीड़ा से त्रस्त हो, अंत अनमोल मानव जीवन पा कर भी मोक्ष प्राप्ति जैसी उत्तम उपलब्धि से वंचित रह जाते हैं। सजनों सजन श्री शहनशाह महाबीर जी के द्वारे पर होने के नाते व सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के पास होते हमारे साथ ऐसा न हो इस हेतु आओ आज जाने कि यह आशा-तृष्णा क्या है और इससे छुटकारा पाने का अमोघ साधन क्या है?

आशा-तृष्णा

इस संदर्भ में सर्वप्रथम सूक्ष्मतया जानो कि जो चीज़ नहीं मिलती उसको प्राप्त करने की इच्छा का नाम आशा है और उन आशाओं को बढ़ाने वाली तृष्णा है।

अब आशा-तृष्णा को विस्तार से समझते हैं:-

आशा

अभीष्ट पदार्थ, पद, अधिकार आदि को प्राप्त करने की कामना को आशा कहा जाता है। यह आशा कभी मरती नहीं यानि एक आशा के न रहने पर या नष्ट हो जाने पर दूसरी का उदय होता है। आशा सदा वर्तमान में रखी जाती है तथा उसकी पूर्णता भविष्य में ही होती है। यह सफलता सम्भावित होती है। सफलता मिल भी सकती है और नहीं भी।

भोग इच्छा के कारण यह आशा सुखद प्रतीत होती है। जब किसी वस्तु के प्रति आशा जगती है तो लोभ का भाव अपने आप जाग्रत हो जाता है। इसके कारण आशा कभी सुखद और कभी दुःखद होती है। इस संदर्भ में मनचाहा फल प्राप्त होने पर जहाँ आशा सुखद लगती है वहीं अभिलाषित वस्तु के अप्राप्त होने पर दुःखद बन जाती है और निराशा को जन्म देती है।

आशा मनुष्य को कामान्ध बना देती है। धनवान, विद्वान, रूपवान आदि बनने की आशा मनुष्य को गलत राह पर ले जाती है व चरित्रहीन बना, अपराध करा दंड़ भोग का अधिकारी बना देती है। आशाधारी जीव की यह दशा होती है कि जब तक वह जीवित रहता है तब तक आशा के पीछे यातना भोगता रहता है। इसीलिए आशा का पर्यवसान यानि अंत दुःखमय होता है।

तृष्णा

नश्वर जगत के सन्निकर्ष/संपर्क में आने पर, सजनों इन्द्रियों के माध्यम से जो इंसान के मन में विषयों की प्राप्ति व भोग की इच्छा या प्रबल वासना उठती है

उसे ही तृष्णा कहते हैं। तृष्णा अर्थात् कोई वस्तु पाने के लिए आकुल करने वाली इच्छा या विषय प्राप्ति की निरंतर बढ़ती कामना। कभी न मिटने के कारण इस तृष्णा को कभी न बुझने वाली प्यास कहते हैं। जानो विषय-भोग की यह प्यास यानि तृष्णा कभी भी मिटती नहीं अपितु आजीवन कुंडल मार कर बैठी हुई काली सर्पणी की तरह फुकारें मारती है और ज़हर खिलारती है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

तृष्णा पयी सतावे, सर्पनी जलावे, रही ए फुकारे मार।

यह तृष्णा काम तृष्णा होती है जो नाना प्रकार के विषयों की कामना करती है। भवतृष्णा होती है जो संसार की सत्ता बनाए रखती है। विभव तृष्णा होती है जो संसार के वैभव की इच्छा करती है। तृष्णा की धाराएँ प्राणियों को बड़ी प्रिय और मनोहर लगती हैं। सुख के फेर में पड़ प्राणी उसकी धारा में बहते हैं और यह भूल जाते हैं कि विषय सुख के भोग से इन्द्रियों की तृप्ति नहीं होती बल्कि इससे तो राग-क्लेश उत्पन्न होता है और उनमें जो रुकावटें आती हैं उनसे द्वेष-क्लेश उत्पन्न होता है।

कहने का आशय यह है कि ज्यों-ज्यों भोग का अभ्यास बढ़ता है, त्यों-त्यों तृष्णा भी बलवती होती जाती है। विषय कामना, विषयों के उपभोग से कभी शांत नहीं होती अपितु और भड़कती है। इस प्रकार विषय सुख के भोगों में रत व्यक्ति, शांति की प्राप्ति हेतु, उनके पीछे भागता है, परन्तु विषय सुख की कामना कभी शांत नहीं होती, अपितु और बढ़ती ही जाती है। तभी तो किसी ने ठीक ही कहा हैः-

जैसे-जैसे मनुष्य की कामनाएँ पूर्ण होती जाती हैं,
वैसे-वैसे तृष्णा की लपटें और धधकती जाती हैं।
उसे किसी तरह भी बढ़ने से रोका नहीं जा सकता।

इसी तथ्य के दृष्टिगत सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी कहा गया हैः-

तृष्णा दी सब को आग लगी है,
नाम दा मींह बरसाये महाबीर जी आये।।
तृष्णा दा रोग है भारी महाबीर जी आप करेसन कारी।

इस तरह सजनों विषयों के भोग से इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती है। अंत में इन्द्रियों में विषय-भोग की क्षमता बिल्कुल नहीं रहती पर तृष्णा फिर भी सताती रहती है। तभी तो कहा गया है कि शरीर कमज़ोर हो गया, सिर के बाल सफेद हो गये, मुँह में दाँत नहीं रहे, आँख और कान जीर्ण हो गए, मनुष्य बूढ़ा हो गया और छड़ी के सहारे चलने लगा फिर भी आशा-तृष्णा पिंड नही छोड़ती यानि सदा नयी की नयी बनी रहती है तथा और तरुणी जवान होती रहती है। इस परिप्रेक्ष्य में जानो कि:-

जैसे बारहसिंगे के सींग शरीर बढ़ने के साथ-साथ बढ़ते हैं,
वैसे ही आशा की वृद्धि के साथ-साथ तृष्णा भी बढ़ती है।

बढ़ते-बढ़ते सजनों जब यह तृष्णा व्यक्ति के मन पर हावी हो, सिर पर सवार हो जाती है तो व्यक्ति सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते यानि प्रत्येक काम करते हुए इससे संतप्त रहता है यानि एक क्षण के लिए भी इससे छुटकारा पा विश्राम नहीं पा सकता। तभी तो सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ इस संदर्भ में कह रहा है:-

खावन पीवन विच तृष्णा सतावे, घर घर दे विच झगड़ा पवावे

साथ ही इस संदर्भ को स्पष्ट करते हुए वह यह भी बता रहा है:-

तृष्णा भैणां नूं पई सतावे, दिने आराम रातीं नींद न आवे

जानो सजनों धर्म ग्रन्थों के अनुसार जैसे सुन्दर सारंगी को चूहा काट डालता है, वैसे ही तृष्णा, संतोष, धैर्य, सत्य, धर्म व शांति आदि गुणों को नष्ट कर डालती है। इस प्रकार इस तृष्णा के कारण ही मन में सतत रूप से संकल्प-विकल्प उपजते रहते हैं। परिणामतः चित्त एकाग्र व ध्यान स्थिर नहीं हो पाता

और आत्मज्ञान प्राप्ति दुष्कर हो जाती है यानि सारा जीवन बेसुरा और आनन्दविहिन हो जाता है। इसलिए तो किसी ने ठीक कहा है कि :

जब तक अंतःकरण में आशा तृष्णा है
तब तक आत्मज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।

इस प्रकार सजनों तृष्णा आनन्दपूर्ण एवं शांत जीवन को संशय, क्रोध, हताशा, तनाव, चिंता, व्याकुलता, अधीरता और आपाधापी यानि खीचांतानी से भर देती है। इसके रहते आत्मपद की प्राप्ति कदाचित् नहीं हो सकती। इस परिप्रेक्ष्य में किसी विद्वान ने कहा भी है:-

सबसे उत्कृष्ट परमपद पर विराजने का मैं यत्न करता हूँ,
पर तृष्णा मुझे विराजने नहीं देती।

अर्थात् तृष्णा ने मेरे आत्मबल को क्षीण कर दिया है। परिणामस्वरूप मैं आत्मबोध कर आत्मपद पर आसीन होने के योग्य ही नहीं रहा हूँ।

याद रखो सजनों संगी-साथी, घर-परिवार, पद-प्रतिष्ठा, लोकसंग्रह, स्वास्थ्य, धन आदि सब परिस्थिति विशेष में छूट जाते हैं लेकिन तृष्णा ऐसी है कि कभी नहीं छूटती यानि मन का पिंड नहीं छोड़ती। कहने का आशय यह है कि विषयों की पूर्ति आज तक संसार में किसी को सर्वांश में नहीं हो पाई। विषयों का चिन्तन करते-करते विषयों में आसक्ति हो जाती है। कामना से वासना और वासना पूर्ति हेतु पुनः - पुनः जन्म होता है। जैसा कि कहा भी गया है:-

एह वाशना किसे पासे न जावे, वाशना न जावे ते तृष्णा ना सतावे।

इस प्रकार सजनों तृष्णा ग्रस्त विषयी प्राणी सोचता है कि हमने भोग्य-विषयों को भोग लिया पर वास्तव में विषय-विषयी प्राणी को भोग लेते हैं। इस प्रकार यह तृष्णा बार-बार प्राणियों को उत्पन्न करती है। इसी संदर्भ में कहा गया है:-

संसार में जितने दुःख हैं उन सबमें तृष्णा ही अत्यन्त दुःखदाई है।

अंततः सजनों जानो कि तृष्णा का कहीं ओर छोर नहीं। उसका पेट भरना कठिन है। यह ही समस्त रोगों या दुःखों का, अधर्मों व जन्म-मरण का कारण है। अतः सब प्रकार की तृष्णाओं का त्याग करना ही सम्पूर्ण दुःखों का नाश कर जीवन के वास्तविक आनन्द का अनुभव करते हुए अंत मोक्ष को पाना है।

इस तथ्य के दृष्टिगत सजनों जगत के पदार्थों की तृष्णा मत करो। तृष्णा को संतोष से मिटाओ। संतोष का सवाल हल करने की युक्ति सतवस्तु के कुदरती में वर्णित बोर्डों के अंतर्गत लिखी हुई है। इस प्रकार यथा प्राप्त में संतोष और आत्मस्वरूप में स्थिति को ही कल्याण का मार्ग समझो। इस तरह आशा-तृष्णा को त्याग कर आत्मसुख में विश्रांति पाओ। याद रखो आशा-तृष्णा का क्षय तभी होता है जब समता का अभ्यास बढ़ता है। अतः समभाव-समदृष्टि की युक्ति का अनुशीलन कर अपने अन्दर-बाहर समता का प्रसार करो। इसी अभ्यास द्वारा आशा-तृष्णा समाप्त हो जाएगी और संकल्प-विकल्पों का विलय हो जाएगा। अंततः याद रखोः-

तृष्णा जहाँ होवे, वहाँ ही जान ले संसार है।
होवे नहीं तृष्णा जहाँ, संसार से सो पार है।।

इस महत्ता के दृष्टिगत सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के इस संदेश को मान लोः-

आशा तजो तृष्णा तजो, भैणां दिल तो तजों अभिमान।
इको रूप पछान लवो, बली पूरण कर देसन काम।।

यह कार्य सजनों कैसे सिद्ध करना है इस संदर्भ में आगामी सप्ताह हम वितृष्णा के विषय में बातचीत करेंगे ताकि तृष्णा की जड़ का ही आपके मन से उन्मूलन हो जाए।

वितृष्णा

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,

उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत सप्ताह सजनों हमने जाना कि आशा-तृष्णा किसी लौकिक अथवा सांसारिक विषय-वासनाओं के रूप में इन्द्रिय सुख-भोग के बारे में होने वाली तीव्र अभिलाषा है। यह तीव्र अभिलाषा ऐसी होती है, जो कभी तृप्त नहीं होती। बल्कि वास्तविकता यह है कि तीव्र अभिलाषा के आंशिक रूप से सिद्ध होने के साथ-साथ यह भी आगे बढ़ती चली जाती है। इसके अधीन हो जो निजी तृष्णा को बढ़ाते हैं वे उपाधि को बढ़ाते हैं। जो उपाधि को बढ़ाते हैं वे दुःख को बढ़ाते हैं यानि अपने लिये आप दुःख खरीद करते हैं। इसी कारण आशा-तृष्णा के जंजाल में फँसा प्राणी अविचारी और विक्षिप्त हो जाता है। इस संदर्भ में अधिकांशतः मनुष्य की मनोवृत्ति यह रहती है कि उसे जिस बात अथवा विषय की तृष्णा होती है, उसे प्राप्त करने के लिये सद्-असद् आदि मूलभूत विचार को छोड़ देता है और एक विवेकहीन इंसान की तरह उस तृष्णा की पूर्ति के लिये विकार वृत्ति अपना, अपनी सारी शक्ति जुटा देता है। इसी कारण तृष्णा प्राणियों को सबसे अधिक विकल करती है। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

आशा तृष्णा दा रोग लगा है, बली आप मिटासन दुःख भारी।

इसी के साथ सजनों हमने यह भी जाना कि जन्म-मरण के वृत्त में घूमते प्राणी, सब संसारी जीव तृष्णामय हैं, राग बद्ध हैं, आसक्त हैं। यह इनकी सहजात वासना है जो कभी समाप्त नहीं होती। इससे छूट पाना सहज नहीं क्योंकि संसार की आसक्ति बार-बार मन को खींच कर भोगों की ओर ले जाती है और विषयों के चिंतन में रत प्राणी संसार-चक्र से कभी निवृत्त नहीं हो पाता। परन्तु जब इंसान की बुद्धि शब्द ब्रह्म विचार धारण कर स्थिर हो जाती है तो संसारासक्ति छूट कर विराग प्राप्त हो जाता है यानि व्यक्ति संतोष का भाव अपनाकर वितृष्ण हो जाता है और पूर्णता परमार्थ में संलग्न होना आसान हो जाता है। आओ आशा-तृष्णा से छुटकारा पाने हेतु आज इसी वितृष्णा के बारे में जानते हैंः-

वितृष्णा

'वितृष्णा' शब्द से तात्पर्य मन से किसी बात की तृष्णा न रह जाने या तृष्णा का अभाव हो जाने से है। यह इच्छा से मुक्त यानि विरक्त मनोभाव का द्योतक है जिसके अंतर्गत सांसारिक विषय-वासनाओं रूपी इन्द्रिय सुखभोग तथा भौतिक आवश्यकताओं के प्रति प्रबल तथा विकट अनिच्छा का भाव मुख्य रहता है। यह मनोभाव अधिकतर किसी दूषित अथवा निन्दनीय या बुरी चीज/बात देखने पर उत्पन्न होता है। इस प्रकार वितृष्णा अरुचिकर-प्रतिकूल विषयों से दूर ले जाती है और मनुष्य को सही अर्थों में मनुष्य बना अखंड शांति की प्रतीति कराती है। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि इच्छाओं से अभिभूत मनुष्य को अपने जीवन में शान्ति यानि तृप्ति नहीं मिल पाती। इन्द्रिय सुखभोग परायण वृत्तियाँ मानव को गर्त में धकेलती हैं जबकि वितृष्णा मनुष्य को काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद-मत्सर और अहंकार के निवारण का मार्ग दिखा आत्मतुष्ट बनाती है व नकारात्मकता से मुक्ति दिलाती है।

वितृष्णा का विषय तृष्णा है। तृष्णा से संतप्त अन्तःकरण को यह जगत दावानल स्वरूप प्रतीत होता है। सब प्राणियों के जो अन्दर होता है, वही बाहर जगत में दिखाई देता है। इस तरह तृष्णा से संतप्त मनुष्य का अन्तःकरण उसे अनुचित कार्यों में प्रेरित करता है। इच्छाओं से अभिभूत

होकर मनुष्य तृष्णा में नित्य उद्वेग करता है। विषय-चिन्तन और विषय-भोग उसकी तृष्णा को बढ़ाता है जबकि वितृष्णा से विषय-चिन्तन से मुक्ति और भोग-इच्छा को दबाने से शान्ति मिलती है।

इस प्रकार वितृष्णा पूर्ण सन्तुष्टि; विरक्ति की स्थिति है जो विवेक से अन्दर उत्पन्न व विकसित होती है। विवेक अर्थात् भले-बुरे, सही-गलत का भेद करने वाली शक्ति। जानो मनुष्य की विवेक रूपी बौद्धिक शक्ति ही उसकी सृष्टि के अनन्य प्राणियों से पृथकता स्थापित करती है। विवेक के आधार पर ही मनुष्य वितृष्ण विषयों के औचित्य-अनौचित्य को निर्धारित करता है व सद्-असद् का ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार इस विवेचना द्वारा मनुष्य निष्कर्ष ग्रहण करता है। इस संदर्भ में प्रज्ञावान-विवेकवान व्यक्ति इस निष्कर्ष के आधार पर तृष्णा को काट, मानव मात्र के कल्याण से विमुखित विषयों के प्रति वितृष्णा लाता है और मानवीय सद्गुणों का विकास कर, सामाजिक उद्-विकास में सहायक सिद्ध होता है व परोपकारी नाम कहाता है।

कहने का आशय यह है कि जीवन की सार्थकता एवं सफलता को समझने के प्रयत्न में जब व्यक्ति विवेक से काम लेता है तो उसे वास्तविक सत्य का बोध होने लगता है और ऐसी स्थिति में क्षणिक प्रसन्नता देने वाली वस्तुओं एवं कार्यों के प्रति उसे स्वतः वितृष्णा होने लगती है। इस तरह वितृष्णा मनुष्य को निवृत्ति की ओर उन्मुख करती है और वह शांत शीतल भाव की स्थिति में आ सुख का अनुभव करता है। हम कह सकते हैं कि वितृष्णा से मनुष्य में विचारशीलता आती है और यह मनुष्य में सन्तोष-भाव लाती है, जिससे चित्त शीतल बना रहता है और मनुष्य को हृदय में आनन्द का अनुभव होता है। परिणामतः जीवन सफल हो जाता है।

इस महत्ता के दृष्टिगत सजनों विचार करो और अपनी विवेकशक्ति से यह निर्णय लो कि कौन सी वस्तु त्याज्य है कौन सी ग्राह्य, क्या दुःख स्वरूप है और क्या सुख स्वरूप, कौन अनित्य है और कौन नित्य, किससे जीवन में छूटना है और किसको पाना है? विवेक द्वारा जब भली-भांति यह जान लोगे कि इहलोक और परलोक के सब सुख भोग अनित्य और असत्य होने के

कारण दुःख स्वरूप व त्याज्य हैं व केवल सत्यमेव आनन्द स्वरूप नित्य परमात्मा ही ग्राह्य है और उसी का संग प्राप्त कर ही पूर्णता को प्राप्त किया जा सकता है व अपने स्थान को पाया जा सकता है। तो निश्चित ही परमात्मा के प्रति चित्त अनुरक्त हो जाएगा। ऐसा होने पर अपने आप ही विषयों के प्रति वैराग्य व काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार के प्रति वितृष्णा उत्पन्न हो जाएगी और सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ अनुसार कह उठोगेः-

भैणां आशा तृष्णा दी काली सर्पणी, बैठी ए कुण्डल मार।
जे इस काली तों बचना चाहो, भज लवो राम बलधार।।

ऐसा होने पर स्वतः ही मन व इन्द्रियाँ नियन्त्रित हो अंतर्मुखी हो जाएँगी और आप सहज ही इच्छाओं/कामनाओं और आवश्यकताओं के मध्य में जो महीन अंतर है उसे परख, किसी बात की अपेक्षा, चिंता व इच्छा न करते हुए, सदा अपनी हैसियत में ही संतुष्ट बने रह सकोगे। आत्मसंतुष्टि से आत्मिक ज्ञान उत्पन्न होगा और उपरति यानि भोगों के सामने पड़े होने पर भी उनमें निरासक्ति हो जाएगी। यह निरासक्ति चित्त को सुदृढ़ता व स्थिरता यानि धीरता प्रदान करेगी और आप समस्त संशय-भौ-भ्रमों से रहित होकर, सच्चाई-धर्म के रास्ते पर निष्कामता से अग्रसर हो अपने आत्मस्वरूप का साक्षात्कार कर सकोगे। अतः सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसारः-

आशा तृष्णा नूं छोड़ के, प्रीति महाबीर जी दे चरणां नाल लाओ।
ओ दीन पर दयाल होसन, मौत दा भय मिटाओ।।

सजनों इसी प्रयोजन सिद्धि के निमित्त यानि तृष्णा की धधकती हुई ज्वाला से आहत् हृदय के उपचारार्थ, सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में महाबीर जी द्वारा औषध रूप में प्रदत्त नाम-अक्षर को समयानुसार युक्ति संगत अफुर अवस्था में चलाने का निर्देश दिया गया है ताकि नाम जाप की वृष्टि से मन उपशम व चित्त शीतल हो जाए और तमाम वासनाओं का नाश होने पर अखंड शांति प्राप्त हो। जैसा कि इस पावन ग्रन्थ में कहा भी गया हैः-

आशा तृष्णा दी काली सर्पणी, ए दरख़त दिता हाई जला।
महाबीर जी ने मेहर कीती, औषधि दित्ती ए पिला।।

उपरोक्त विवेचना से सजनों ज्ञात होता है कि इन्द्रियों से मनुष्य को कभी तृप्ति नहीं मिलती। इसलिए सीमा-विहीन भोग परायण वृत्ति मनुष्य को भ्रष्ट कर देती है जबकि भोग इच्छा पर नियंत्रण रखने के रूप में वितृष्णा व्यक्ति में सद्-गुणों का विकास करने के साथ-साथ इस जगत की नश्वरता का बोध भी कराती है।

स्वस्थ समाज के निर्माण में भी वितृष्णा का विशेष महत्त्व है। धन, पद, प्रतिष्ठा आदि के प्रति लालसा प्रायः मानव का विवेक हर लेती है, अतः वह उचित-अनुचित सभी साधनों से इसे प्राप्त करने का यत्न करता है लेकिन ज्यों-ज्यों वास्तविकता को समझकर व्यक्ति में इनके प्रति वितृष्णा होती है, त्यों-त्यों वह विवेक का आश्रय लेकर उचित साधनों पर आधारित जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार स्वस्थ समाज के निर्माण में भी इसकी उपयोगिता स्पष्ट है। यही नहीं वितृष्णा का भाव शान्त है। वितृष्णा के भाव से मनुष्य में कदाचित उग्र उद्वेग नहीं होता। उदाहरणस्वरूप खून-खराबा, आतंक फैलाना, बलात्कार आदि सभी विषय सभ्य मनुष्यों के मानसिक स्तर पर वितृष्णा के कारण बनते हैं लेकिन वितृष्णा में वह क्रिया उत्पादिनि शक्ति नहीं होती कि व्यक्ति वितृष्णा के विषय को हानि पहुँचाने की ओर प्रवृत्त हो जाये। इस तरह वितृष्णा शांति का मार्ग दिखाती है।

अंत में सजनों हम तो यही कहेंगे कि 'वितृष्णा' का क्षेत्र उतना ही व्यापक है, जितना कि यह कामनाओं/तृष्णा से रचा, बसा आकर्षक विश्व है। पंच भूतों से मिलकर यह भौतिक जगत दृश्यरूप होता है। भौतिक तत्त्वों से निर्मित्त इस शरीर के प्रति आसक्ति अथवा प्रेम का होना अत्यन्त स्वाभाविक है। संसार में जिस भी प्राणी का जन्म होता है वह समय के साथ-साथ कुछ विशेष वस्तुओं के प्रति आसक्ति की भावना से ग्रस्त होने लगता है। संसार की प्रत्येक वस्तु जो मनुष्य को रुचिकर या आकर्षक लगती है, वह उसे पाने के लिये एड़ी-चोटी का जोर लगा देता है, किन्तु संसार से कूच करते समय जो सत्य-तत्त्व उसके हाथ लगता है, वह यह कि 'जब शरीर नष्ट ही होना था तब इसको प्रसन्न रखने के लिये इतने उपक्रम करने का क्या कोई अर्थ था?

कामनाओं के पीछे इस प्रकार भागने से अच्छा तो यह था कि कामनाओं के इस मोहपाश में ही न पड़ता'। तब जाकर समझ आती है कि कामनाओं का कोई अन्त नहीं, इसलिए जितना हो सके इनसे बचने का उपाय करो। इसी से आत्मिक-शान्ति प्राप्त होगी।

इस बात को समझते हुए सजनों मान लो कि यह भौतिक संसार नश्वर है और इस मृगमरीचिका से दूर रहने में ही सुख है। इसके स्थान पर आत्मस्वरूप की पहचान को यथोचित्त महत्त्व दो यानि आत्मा जो परमात्मा का ही अंश है, उस अंश को अंशी से मिलाना अपने जीवन का उद्देश्य मानो तथा उद्देश्य में बाधक, भौतिक संसार की प्रत्येक वस्तु को निःसंकोच होकर त्याग दो। यही नहीं प्रयोजन सिद्धि हेतु निकट परिवेश एवं समाज में क्या कुछ घटित हो रहा है, उससे भी निर्द्वन्द्व रहना सीखो। इस प्रकार जब स्वयं को सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर का एक अंग मानकर पुनः उसमें मिल जाने की व्याकुलता का अनुभव करोगे तो स्वतः ही इस संसार के अन्य सुख व्यर्थ प्रतीत होने लगेंगे और आप संसार की परिवर्तनशीलता तथा भौतिक भोगों की नश्वरता का ज्ञान प्राप्त कर, स्वेच्छा से उनका त्याग करने में समर्थ हो जाओगे और वितृष्ण हो परम आनन्द पाओगे।

सजनों यही हमारा मकसद है। इस मकसद की सिद्धि के निमित्त एक सदाचारी इन्सान की तरह वितृष्ण हो पवित्रता भरा जीवन जीना सुनिश्चित करो। इस तरह निष्काम-भाव से परोपकार कमाते हुए सब की सेवा करो - सेवा करो - सेवा करो और परमेश्वर के सपुत्र कहलाओ। याद रखो जो वास्तविक रूप से परमेश्वर का सपुत्र बन जाता है वह परमेश्वर सहज ही उसको आप राज सौंप देते हैं। आप भी उस राज को प्राप्त करने के अधिकारी बनो इस हेतु हमारी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं।

दिनाँक 10 मार्च 2019 का सबक़

हुक्म की महानता व महत्ता-1

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,
उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात्

ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

सजनों हर समय इस सत्य का अनुभव करते रहो। यकीन मानो यदि ऐसा कर लिया तो ताकतवर व बुद्धिमान बन जाओगे व सब पर निर्भरता समाप्त हो जाएगी।

सजनों सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कहता हैः-

हुकम बड़ा बलवान सब कुछ हुकम करदा,
हुकम बड़ा महान, सब कुछ हुकम करदा।।

हाँ हाँ सब कुछ हुकम करदा,
वाह वाह सब कुछ हुकम करदा।

हुकम बड़ा बलवान सब कुछ हुकम करदा,
हुकम बड़ा महान, सब कुछ हुकम करदा।।

हुकम सुजाने हुकम पछाने, हुक्म बड़ा प्रधान,
सब कुछ हुकम करदा।

ओ३म् हुकम बड़ा प्रधान ए, हुकम बड़ा प्रधान,
सब कुछ हुकम करदा।।

उपरोक्त पंक्तियों का भावार्थ भली-भांति समझने हेतु सजनों आज समझते हैं कि हुकम से क्या तात्पर्य हैः-

इस संदर्भ में जानो कि हुकम का अर्थ है उस ईश्वर की आज्ञा, अनुमति या आदेश जिसने हमें किसी विशिष्ट प्रयोजन की सिद्धि के निमित्त इस मृतलोक में भेजा है।

जैसा कि यह सत्य तो सर्वविदित है कि इस सृष्टि का रचनाकार, परब्रह्म परमेश्वर है तथा यह सृष्टि युगों-युगांतरों से उसकी ही ब्रह्म शक्ति अर्थात् ब्रह्मसत्ता से क्रियाशील है। इससे स्पष्ट होता है कि इस सृष्टि का वास्तविक शासक व कर्त्ता-धर्त्ता वह निराकार परब्रह्म परमेश्वर ही है और वह ही अपनी इस अद्भुत रचना की रमज जानता है कि उसने क्योंकर और किस प्रयोजन की सिद्धि के निमित्त यह सृष्टि उपजाई है। इस परिप्रेक्ष्य में हम, आप, सब उसकी प्रजा हैं। इस नाते सजनों सृष्टि चक्र को उचित ढंग से चलायमान रखने के लिए हम सब प्रजावासियों का कर्त्तव्य बनता है कि हमारा शासक कुदरत के विधान अनुसार जो भी हमें अधिकारपूर्वक आज्ञा देता है, हम एक आज्ञाकारी निष्काम सेवक की भांति 'जो हुकम' कहकर, समर्पित भाव से, धर्म शास्त्र आदि में बताई विधि अनुसार, उन आज्ञाओं का नीति संगत समयबद्ध पालन करें। यहाँ 'जो हुकम' का अर्थ है 'आपकी जैसी आज्ञा है वैसा ही होगा'। याद रखो इस प्रकार हुकम पालन करने वाला आज्ञाकारी सुपुत्र ही उस ईश्वर का संग-साथ प्राप्त कर उसके हुकम की रमज़ जान व समझ सकता है।

उपरोक्त आशय से सजनों स्पष्ट होता है कि सारी सृष्टि एक ईश्वर के 'हुकम' से चल रही है यानि हुकम के अंतर्गत ही सब उत्पन्न हो रहे हैं और हुकम से ही सभी प्रकार के क्रियाकलाप सम्पन्न हो रहे हैं। पवन, पानी, अग्नि, धरती, आकाश, सूर्य-चाँद, तारे-नक्षत्र, आदि सब उस ईश्वरीय हुकम के अधीन हैं और ईश्वरीय रज़ा के अनुकूल अनुशासनबद्ध होकर निष्काम भाव से अपना कार्य कर रहे हैं यानि सृष्टिकर्त्ता के हुकम से बाहर कुछ भी नहीं है।

अन्य शब्दों में सर्गुण में जो कुछ दृश्य, श्रव्य और तत्त्व रूप में सभी आकारों और प्रकारों में व्यावहारिक रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है, वह ईश्वर के हुकम से ही हो रहा है। तभी तो समस्त वेद-पुराण, धर्म-ग्रन्थ व शास्त्र, कुदरती नैतिक संविधान व आचार-संहिता के रूप में उसी के हुकम का ही ज़िक्र कर रहे हैं जिससे स्पष्ट होता है कि यह हुकम समस्त जीवों के कल्याण के निमित्त है और इसीलिए विवेकसम्पन्न मानव के लिए सत्य-धर्म पर स्थित रहने हेतु इसकी यथा पालना करना अनिवार्य है।

जानो ईश्वर का हुकम गहन, अगाध एवं दुर्बोध होने के साथ-साथ सदा सत्य व अटल है तथा इसे वह परमेश्वर ही देख व समझ सकता है। इस संदर्भ में याद रखो कि परमात्मा के हुकम की कोई व्याख्या नहीं कर सकता क्योंकि परम की इच्छा की कोई शाब्दिक अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। तभी तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी कहा गया है:-

कैसी है शोभा आपदी, किसे न लखी जाय,
जुर्रत है किसदी वर्णन करे ओ कलम न लिखने पाये।

इस संदर्भ में नानक जी भी कहते हैं कि 'हुकम' का वर्णन वास्तव में असंभव है।

इस प्रकार सजनों 'हुक्म' - सर्वश्रेष्ठ आज्ञा यानि प्रभु का आदेश है। यह आदेश हर स्थिति में उचित और समाज सम्मत है। अतः इनका पालन किया

जाना व्यक्ति और समाज दोनों के लिए हितकर है तथा इसी के अनुकूल व्यवहार करने से घर, परिवार व समाज की रक्षा और सुख-शांति में वृद्धि हो सकती है तथा लोक-परलोक में उत्तम गति प्राप्त हो सकती है। सारतः हम कह सकते हैं कि जो ताकत ईश्वरीय वचनों में है वह किसी और समझौते में नहीं। जैसे कि 'श्री जपुजी साहब' में भी कहा गया है:-

विश्व का प्रत्येक कार्य व्यापार और व्यवहार परमात्मा के हुकुम में बँधा है, उससे बाहर कुछ भी नहीं। यदि जीवात्मा इस तथ्य को सही परिप्रेक्ष्य में पहचान ले और सब दशा में ईश्वर का हुकम बिना मनमत लगाए सिर-माथे पर धारण करे तो वह अहंकार के परिवेश (मैं करता हूँ, मैं करूँगा आदि) से मुक्त हो जाता है।

अन्य शब्दों में 'हुकम' ईश्वर की आज्ञा के साथ सामंजस्य स्थापित कर, आंतरिक शांति प्राप्त करने के लक्ष्य का प्रतिनिधित्व करता है। यही नहीं, चौरासी काटने के लिए व जन्म-मरण के चक्कर से छूटने के लिए भी ईश्वर के वचनों यानि हुकम की पालना करना अनिवार्य है।

इस संदर्भ में यह भी जानो कि ईश्वरीय आज्ञा का पालन करने वाला आज्ञाकारी सुपुत्र कहलाता है। वह मननकार बगैर किसी दबाव के यानि अपनी खुशी से व निष्काम भाव से अपने आप को ईश्वरीय आज्ञा के पालन के निमित्त समर्पित करता है। आज्ञापालन की यह प्रवृत्ति आज्ञाकारिता कहलाती है। आज्ञापालक कर्त्तव्यबोध से प्रेरित होकर अपने कर्त्तव्य के पालन हेतु स्वेच्छा से अपने स्वार्थ, सांसारिक सुखों, मनोकामनाओं, अहंकार, प्रतिष्ठा, मान-अपमान, राग-द्वेष, वैर-विरोध, ज्ञान-अज्ञान इत्यादि मनोभावों का त्याग कर, ईश्वर के हुकम को सर्वोपरि मान, उसको एक सच्चे सेवक की भांति अंगीकार करता है तथा उस पर कोई तर्क-वितर्क, वाद-विवाद नहीं करता। इस प्रकार वह हर हाल में ईश्वरीय हुकम को धारण कर उसकी पालना हेतु विपरीतता/विषमता और प्राणों की परवाह किए बिना अपना तन-मन-धन सब

वार देता है यानि अपने प्राण तक निछावर करने से नहीं सकुचाता। तभी तो वह आत्मसमर्पण द्वारा अपने मन पर अधिकार रखने वाला बन यानि मनमत से ऊपर उठ आत्मज्ञान द्वारा आत्मा में लीन होने का सुख अनुभव कर परमशांति पाता है। इसी तथ्य के दृष्टिगत सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

ब्रह्म शब्द वचन प्रवान करो, ब्रह्म शब्द बड़ा महाने।
आवागमन ओहदा मिट गया, उस पा लिया आत्मिक ज्ञाने।।

इस संदर्भ में सजन श्री शहनशाह हनुमान जी का हुक्म/आज्ञापालन हम सबके सम्मुख आदर्श स्वरूप है जिन्होंने हर स्थिति में अपने इष्ट के हुकम को सर्वश्रेष्ठ माना व उसकी पालना करने हेतु कठिनाईयों व बाधाओं की परवाह किए बगैर, अनेकों बार अपने प्राण संकट में डाल दिए। परिणामतः परमेश्वर की कृपा व भक्ति-शक्ति की ताकत से उन्होंने सर्वोच्च पद प्राप्त किया और उनके द्वारा प्रतिपादित आचार-विचार व व्यवहार की शैली, श्रेष्ठतम मार्गदर्शन के रूप में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के माध्यम से हमारे सम्मुख है। इसलिए तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

हो हो हो हनुमान जी दे वचनां दी पालना करो।
हो हो हो ओन्हां दी बात फड़ो पकड़ो इक इक गल।
ओ दाता है शहनशाहवां दा शाह,
हम बालक ओन्हां दे हैं निर्बल--हम बालक ओन्हां दे हैं निर्बल।

इससे सजनों स्पष्ट होता है कि आज्ञापालन करने वाले व्यक्ति में आज्ञापालन करने की इच्छा व सामर्थ्य दोनों होनी चाहिए। ऐसा इसलिए क्योंकि जब तक उसकी इच्छा नहीं होती तब तक वह स्वयं को आदेशित क्रिया में प्रवृत्त नहीं कर पाता। जितनी इच्छा तीव्र होती है उतनी ही क्रिया की गति और गुणवत्ता होती है। इसी तरह सामर्थ्य का महत्त्व भी आज्ञापालन में इच्छा के समानांतर

ही होता है। यदि आज्ञापालक में आज्ञापालन की सामर्थ्य ही नहीं होती तो वह इच्छा होते हुए भी आज्ञा का पालन नहीं कर पाता। इसके अतिरिक्त सजनों आज्ञापालन की मर्यादा लोक कल्याण की अपेक्षा करती है। इस मर्यादा को ध्यान में रखते हुए, ईश्वर की आज्ञा के अधीन रह, अपने जीवन का हर कार्य करने वाला ही, श्रेष्ठ मानव माना जाता है। यह बात युग पुरुषों के जीवन चरित्र से भी साक्षात् परिलक्षित होती है।

इसके विपरीत ईश्वर की आज्ञा का पालन न करना सदा नुकसानदायक/हानिकारक साबित होता है। रावण व दुर्योधन के संदर्भ में यह कथन शत्-प्रतिशत् सही सिद्ध होता है। चूंकि उन्होंने सत्य-नियम के सिद्धान्त अनुसार निर्धारित ईश्वरीय हुकम यानि नीति-नियमों की अवज्ञा की इसलिए उनका विनाश हुआ। यही हाल वर्तमान कलियुग में अधिकतर मनुष्यों का भी है। वे भी ईश्वर की आज्ञा या नीति के विरुद्ध, विचार का सवलड़ा रास्ता छोड़, अविचारयुक्त कवलड़े रास्ते पर प्रशस्त हो रहे हैं यानि गुरुमत के स्थान पर मनमत का अनुगमन करते हुए कुकर्म-अधर्म कमा रहे हैं। परिणामस्वरूप अपार कष्ट-क्लेश व दुःख भोगते हुए पतनोन्मुख हो रहे हैं। जैसा कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा भी गया हैः-

इंसान दुनियां विच आए के इस जन्म दी कदर न जाती।
छल-कपट द्रोह करके, अपने जन्म नाल कीती गुस्ताखी।।

यदि ध्यान से देखा जाए तो अपने को पूर्ण मानने वाले, ऐसे अहंकारी, मनमत के अधीन हो, दुराचार, भ्रष्टाचार, अत्याचार व व्यभिचार जैसा दानवीय चलन दर्शाते हैं। परिणामतः मनुष्य कहलाने के काबिल ही नहीं रहते। इस तथ्य के दृष्टिगत सजनों जानो कि जिसका भी मन मनमानी करता है वह पतन के पाताल में गिरता ही गिरता है। उसकी प्रवृत्ति स्वयमेव अधोगामिनी हो जाती है क्योंकि वह विवेकहीन करणीय-अकरणीय का निर्णय नहीं कर पाता और उसकी बुद्धि विनाश को प्राप्त हो जाती है। इसके विपरीत जो हँस कर अपनी

मनमत त्याग, गुरुमत यानि ईश्वर के हुकम अनुसार, उसकी आज्ञा का पालन करता है, वह अपने इस अनमोल मानव जीवन के लक्ष्य का संधान यानि पता लगा पाता है यानि वह जान जाता है कि परमात्मा का प्रत्येक निर्देश एक दिशा है जो उसे अपने वास्तविक घर परमधाम की ओर ले जा रहा है। अतः वह आत्मोत्थान का आकांक्षी उस पर पूरा ध्यान देता है जिससे उसकी चेतना ऊर्ध्वमुखी हो जाती है, वृत्ति-स्मृति निर्मल हो जाती है व बुद्धि विवेकशील हो जाती है यानि सत्य-असत्य, भले-बुरे का बोध करने में सक्षम हो जाती है। इस प्रकार वह विचारशील अपने मन को एकाग्र, चित्त को शांत कर जीवन के सत्य को खोज, उसे प्राप्त कर लेता है और सत्-वादी बन, यश-कीर्ति का अधिकारी बनता है। इस संदर्भ में जैसा कि कहा भी गया है किः-

जीव जब तक इस हुकम की सत्यता, अटलता को नहीं समझता और मनमत अनुसार चलता है तब तक वह दुःखी रहता है परन्तु जिस समय वह ईश्वर की परम कृपा से उसके हुकम की पहचान करने में समर्थ हो जाता है तत्क्षण ही वह परम सुख का अनुभव करना आरम्भ कर देता है। हुकम की पहचान मानव ह्वदय से अहम् का नाश कर देती है। इस महत्ता के दृष्टिगत सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित इस संदेश को मान लोः-

मनमत ते सजनों न चलना, गुरुमत दा संग असां करना।।

इस तथ्य के दृष्टिगत सजनों हमारे लिए बनता है कि हम सर्वोत्तम ब्रह्माज्ञा का पालन करें। ब्रह्माज्ञा कहती है कि हम ब्रह्म हैं यानि उसी का ही अंश हैं। हमारा उससे सम्बन्ध समुद्र-वीचि यानि लहर का है। लहर उठी, समुद्र में मिल गई, क्षणिक भेद है। यह भेद अपने अस्तित्व के सत्य को स्वीकारने और ईश्वरीय आज्ञा का पालन करने से ही मिट सकता है। अतः ब्रह्माज्ञा की सर्वश्रेष्ठता पर चिंतन कर, उसके आदेशों, निर्देशों को अपने आचार-व्यवहार में लाना यानि पूरी निष्ठा से उसका पालन करना सुनिश्चित करो। यही कल्याण और श्रेय यानि उन्नति का मार्ग है। इसी से व्यक्तित्व का विकास हो

सकता है और अनुशासित ढंग से जीना आ सकता है। इसी से अहंकार का विसर्जन हो सकता है और आज्ञादाता यानि ईश्वर के प्रति विनय-समर्पण का भाव जाग्रत हो सकता है जिससे सुनिश्चित रूप से जीवन लक्ष्य प्राप्ति में सफलता मिलती है। इस महान सफलता को प्राप्त करने के योग्य बनने हेतु सजनों हुकम के विषय में इससे आगे बातचीत आगामी सप्ताह करेंगे।

दिनाँक 17 मार्च 2019 का सबक़

हुक्म की महानता व महत्ता-2

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान

अर्थात्

ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,

उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,

अर्थात् ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-

ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत सप्ताह सजनों हमने जाना कि दृश्य-अदृश्य जगत में प्रत्येक पदार्थ का आवागमन हुकम के अंतर्गत है यानि विश्व के सभी रूप-आकार उसी परमेश्वर के हुकम द्वारा सर्जित हैं। जीव का आना भी हुकम में है और उसका नष्ट होना भी हुकम के अन्तर्गत ही है। हुकम से ही वह सांसारिक कार्य कलापों में संलग्न होता है और हुकम से ही वह श्रद्धा एवं प्रेम से संयुक्त होकर भक्ति भाव अपनाकर कर्मठ व शक्तिवान भक्त बनता है।

इस प्रकार सजनों उस ईश्वर के हुकम से बाहर कुछ भी नहीं है। इस संदर्भ में जो उस हुकमी यानि परमेश्वर की रमज़ को जान उसे अपने हृदय में बसा लेता है वह उसकी कृपा का विशेष पात्र बन आवागमन से मुक्त हो जाता है। इस विषय में नानक कहते हैं जिस पर उस (प्रभु) की रज़ा (हुक्म) के अन्तर्गत कृपा होती है वही गुरुमुखी व्यक्ति उस हुक्म की गति का रहस्य जान सकता है। उनके अनुसार हुकम अनंत विस्मय का बोध है अर्थात् अपार आश्चर्य स्वरूप है। जो इसको पहचान लेता है वही जीने की वास्तविक कला और सत्य की पहचान करने में सक्षम हो जाता है। पहचान से यहाँ तात्पर्य अपने कार्यकलापों

में कर्त्तापन का अभिमान न करने अर्थात् अहंकार का नाश करने से है। उनके अनुसार इस हुकम को पहचान कर अंगीकार करने वाला ही निजी अहम् का नाश कर निर्मल हो पाता है और हुकम की रज़ा से सचिहार बन सच्चा योगी कहलाता है। आओ सजनों अब आज आगे जाने कि इस हुकम का व्यावहारिक रूप क्या है?

इस परिप्रेक्ष्य में जानो कि उस विधाता ने जब यह ब्रह्मांड रचा, तो इसकी शासन व्यवस्था को समुचित ढंग से चलायमान रखने के लिए, कुदरती संविधान रचा। संविधान अर्थात् 'सम' + 'विधान'। 'सम' यहाँ पर सद्गुणसम्पन्न, संपूर्ण, यथार्थ व समान परमेश्वर का प्रतीक है तथा 'विधान' शब्द से आशय नियम, नीति, कानून, व्याख्या, व्यवस्था, कार्य करने की रीति, विधि व प्रणाली से है। इस प्रकार 'संविधान' शब्द का अर्थ उस परमेश्वर द्वारा निर्मित सदाचार के नियमों और नीतियों के समूह, उनकी व्याख्या, व्यवस्था व उनके अनुरूप कार्य करने की रीति, विधि व प्रणाली से है।

सजनों कुल मानव जाति को सत्य-धर्म के निष्काम मार्ग पर प्रशस्त कर, जीवन अर्थ को सिद्ध करने की सुमति प्रदान करने हेतु, परमेश्वर ने इस संविधान का वर्णन, न केवल बैहरुनी वृत्ति के अंतर्गत, वेद-शास्त्रों, धर्म-ग्रन्थों आदि में, शब्द ब्रह्म विचारों के रूप में किया अपितु अन्दरुनी वृत्ति में भी, प्रत्येक मानव के हृदय व रोम-रोम में, आत्मिक ज्ञान के रूप में, इसे गुप्त निधि के रूप में, रक्षित कर दिया ताकि हर मानव के मन में सत्य सदा प्रकाशित रहे और वह मायावी जगत के प्रभाव से चलायमान हो इस विधान के विपरीत मानव धर्म का उल्लंघन न कर बैठे। जैसा कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में भी सजन श्री शहनशाह हनुमान जी कह रहे हैं:-

चार वेद फुर्तीले जे, चार वेद रसीले जे।
इन्हां वेदां दा प्रचार हुआ चार वेद फुर्तीले जे।।

चौंह वेदां विच्चों जैं पहचान किया।
ओ सच्ची सरकार हुआ, ओ सच्ची सरकार हुआ।।
चार वेद विदित चार वेद गुपट, इन्हां वेदां दा जैं सार लिया।
ऋग, साम, यजुर और अथर्व वेद, इन्हां चों आद अक्षर जैं पहचान किया।।

चार वेद हैन ओ हृदय, छः शास्त्र ही शरीर सार हुआ।
दयालु हैन ओ वेद प्रकाशी, प्रकाश जैंदा कुल जहान हुआ।।
चार वेद ग्रन्थ है ओ हृदय, छः शास्त्र तो रोमावली हुआ।
रोम रोम विच वेद ही लिखित है, अंग अंग विच एही तो रंगावली हुआ।।

ग्रन्थ वेदों दा जैं जान लिया, चार वेदां नूं जैं पहचान लिया।
जैं जीवन बना लिया नगरी ऊपर, उस रौशन अपना नाम किया।।
चार वेद हसन्त छः शास्त्र फुलन्त हुआ, जैं वेदां चों जीवन बना ही लिया।
प्रकाश हुआ सारी नगरी ऊपर, ओ कई कई खेड खिडन्तर हुआ।।

आगे श्री रामचन्द्र जी कहते हैं

ध्वनिः- हम हैं वेद प्रकाशी, हम हैं जगत निवासी।।

इस प्रकार सजनों अन्दरुनी व बैहरुनी दोनों वृत्तियों में परमेश्वर ने इस संविधान के माध्यम से, नश्वर शरीर, ब्रह्म, जीव व जगत के सार का वर्णन करते हुए, जीवात्मा के हित और अनुशासन का विधान यानि करणीय व अकरणीय निषेधात्मक कर्त्तव्य कर्मों की जानकारी दे, उसका पालन करने का हुकम दिया और कहा कि जो भी परम पुरुषार्थ द्वारा यह ब्रह्मकोश यानि समस्त वेद राशि प्राप्त कर, अपने हृदय व कुल ब्रह्मांड में सर्वव्यापक नित्य परमात्मा की अभिव्यक्ति कर आत्मस्वरूप में स्थित हो जाएगा, वही वीर ईश्वर का सुपुत्र बन इस जीवन का परिपूर्ण आनन्द उठा, अंत अपने सच्चे घर परमधाम पहुँच विश्राम को पाएगा और रोशन हो जाएगा।

अन्य शब्दों में सजनों यदि हम उपरोक्त बात को ध्यान से समझें तो ज्ञात होता

है कि सृष्टि के आरंभिक काल से, इस ब्रह्मांड के शासक ईश्वर के हुकम अनुसार, मानव को समभाव आधारित संविधान के अनुकूल, यथार्थ आत्मिक ज्ञान प्राप्त कर, एकरस आचार-विचार अपनाने का व परस्पर सजन भाव अनुकूल व्यवहार करने का हुकम यानि आदेश दिया गया है। अतः इस कुदरती विधान अनुरूप परमेश्वर के हर हुकम को मानना प्रत्येक मानव का सर्वोपरि कर्त्तव्य बनता है। इस कर्त्तव्य का कुशलता से पालन करने पर ही अर्थात् समभाव आधारित विधि के इस विधान को नियमानुसार खुद पर, परिवार पर व कुल समाज पर लागू कर उसको व्यवहार में लाने से ही मानव का मन-चित्त स्वतः एकाग्र हो सकता है और बुद्धि की विवेकशीलता द्वारा मानसिक संतुलन बना रह सकता है। फलस्वरूप जिह्वा स्वतन्त्र, संकल्प स्वच्छ व दृष्टि कंचन होने पर सर्वत्र शांति व्यवस्था कायम रह सकती है और मानव हर प्रकार के मानसिक तनाव से मुक्ति पा सदा आनंदित व अहंकार रहित बना रह सकता है।

इस संदर्भ में सजनों सर्वोत्कृष्ट आदिकालीन नैतिक संस्कृति का उदाहरण हमारे सामने ही है जिन्होंने ईश्वरीय हुकम की पालना करते हुए, व्यक्तिगत व सामाजिक रूप से इस सम्-विधान को अपनाया और सर्व एकात्मा के सत्य को अपने भाव व दृष्टि में एकरस प्रकाशित रख, तद्नुकूल आचार-विचार व व्यवहार दर्शाया। निःसंदेह तभी वह समयकाल सतयुग यानि स्वर्ण युग कहलाया और तत्कालीन संस्कृति युगों-युगांतरों तक ज्ञान-विज्ञान व नैतिक उत्कृष्टता के साथ-साथ सर्वांगीण स्वस्थता, सुख-समृद्धि, शांति, एकता व एक अवस्था की सर्वश्रेष्ठ मिसाल कायम रख पाई और आज भी हमें पुनः वही समभाव आधारित संविधान अपनाकर सर्वोत्कृष्टता के उच्चतम शिखर पर पहुँचने के लिए प्रेरित कर रही है।

इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि ईश्वरीय हुकम अनुसार सम्-विधान का पालन करने पर ही यानि सदा अपने मन को सम में स्थित रख, समदृष्टि होने पर ही एक मानव सुशिक्षित और सज्जन पुरुष बन व्यक्तिगत, पारिवारिक,

सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक व वैज्ञानिक दृष्टि से पर्याप्त उन्नत अवस्था को प्राप्त कर सकता है और सबके प्रति समान भाव रखते हुए निष्कामता से सच्चाई-धर्म की राह पर चलता हुआ, परोपकार जैसा महान पराक्रम दिखाने के योग्य बन जाता है। देखा जाए तो सजनों यही हकीकत में सर्वोच्च आज्ञा यानि ईश्वरीय हुकम का सर्वश्रेष्ठ व्यावहारिक रूप है जो हमें समुचित पुरुषार्थ द्वारा आजीवन आत्मप्रकृति अनुसार अपने आचार-विचार व व्यवहार को साधे रख, मन-वचन-कर्म द्वारा हर परिस्थिति व अवस्था में सदा सत्य-धर्म पर अडिग डटे रहने का निर्देश देता है।

इस संदर्भ में सजनों यदि आप भी चाहते हो कि आप भी परमेश्वर की इस सर्वोच्च आज्ञा का पालन कर, अपनी बनत के अनुरूप अपनी सर्वोत्कृष्टता को सिद्ध करने के योग्य बनो तो फिर युक्तिसंगत प्रणव मंत्र यानि मूल मंत्र आद् अक्षर के अजपा जाप द्वारा, मस्तक की ताकी खोल, अंतर्निहित इन गुप्त वेदों के ज्ञान प्रकाश को ग्रहण कर, 'आत्मा में जो है परमात्मा', उसको जानने का परम पुरुषार्थ दिखाओ और इस प्रकार शरीरस्थ छः शास्त्रों के भाव या धर्म को अपना कर, ईश्वरीय आज्ञाओं का पालन करने में समर्थ हो जाओ।

यहाँ याद रखो कि जो भी इस प्रकार अपने मन को अफुरता से उस परमेश्वर में लीन रखने में समर्थ हो जाता है, उसी निर्मल वृत्ति के समक्ष आत्मीयता से भरपूर यह हृदयस्थ गुप्त वैदिक ज्ञान स्वतः प्रकाशित यानि प्रकट हो जाता है। फिर वह इस सत्यज्ञान को वर्ताव में ला सत्यनिष्ठा व धर्मपरायणता से जीवनयापन करता है यानि कदाचित् मनमत व शारीरिक स्वभावों के अधीन होकर, जीवन में कोई भी कार्य ईश्वर की आज्ञा या धर्म-शास्त्रों के विरुद्ध नहीं करता।

उपरोक्त तथ्य के विषय में सजनों यद्यपि हम मानते हैं कि ईश्वरीय हुकम के तहत्, वर्तमान कलुषित युग के भ्रमित बुद्धि इंसानों के लिए, अंतःस्थित, आत्मिक ज्ञान के गूढ़ अभिप्राय को समझ, उस कुदरती संविधान को चरितार्थ करना दुष्कर है तथापि वे बैहरुनी वृत्ति में एकाग्रचित्तता से, वेद-शास्त्रों व

धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन व मनन द्वारा, उनमें विदित शब्द ब्रह्म विचारों को आत्मसात् कर, कार्यरूप में परिणित अवश्य कर सकते हैं। इस प्रकार ईश्वरीय हुक्म की पालना पर खरे उतर, वे समभाव-समदृष्टि के सबक़ अनुसार, संतोष-धैर्य का श्रृंगार पहन, सत्य-धर्म के निष्काम रास्ते पर चलते हुए, सजन वृत्ति पकड़ सकते हैं और एक अक्लमंद विवेकशील इंसान की तरह, परिपूर्णतः आत्मीयता के उसूलों पर खरे उतर, उन्हें अपने आचार-विचार व व्यवहार द्वारा प्रतिष्ठित कर समबुद्धि होने का परिचय भी दे सकते हैं।

यदि चाहते हो ऐसा ही हो तो ईश्वरीय हुकम की पालना करते हुए एकाग्रचित्तता द्वारा, ख़्याल को ध्यान वल और ध्यान को प्रकाश वल रखते हुए, इस वैदिक/आत्मिक ज्ञान अर्थात् शब्द ब्रह्म विचारों को अंगीकार करते हुए अपने स्वभाव/प्रकृति के अंतर्गत करने की सामर्थ्य दिखाओ। याद रखो यदि ऐसा कर दिखलाया तो अंग-अंग आत्मीयता के भाव से सराबोर हो जाएगा और स्वतः ही समभाव नज़रों में हो जाएगा। फिर सच्चाई-धर्म के निष्काम रास्ते पर अग्रसर रहते हुए, परोपकार प्रवृत्ति में ढलना कोई कठिन कार्य नहीं रहेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि फिर अपने अंग-अंग को उसी रंगत में साधे रख शास्त्रविहित प्रकृति में परिपूर्णता ढल वेद प्रकाशी बनना यानि ज्योति स्वरूप में स्थित हो जाना सहज हो जाएगा।

अंत में सजनों याद रखो, जानो कि ईश्वर के हुकम की पालना, अनुशासित व मर्यादित बनाती है व अनुचित धर्म विरुद्ध कार्य करने से रोकती है। जो व्यक्ति वर्तमान में आज्ञापालन को अपने आचार-व्यवहार का अभिन्न अंग बना लेता है वह आत्मसंयमी मनमत पर विजय पा जितेन्द्रिय हो जाता है। ऐसा व्यक्ति सहजता से अपने अहं का विसर्जन कर देता है। अहं से मुक्ति उसके व्यक्तित्व को इतना सरल और मृदुल बना देती है कि वह सबका प्रीति-पात्र बन जाता है। यह सामाजिक स्वीकृति उसके आत्मविश्वास में वृद्धि करती है और फिर आत्मविश्वास के कारण उसके व्यक्तित्व में ऐसा निखार आता है जो उसे

अद्वितीय छवि प्रदान करता है। ऐसा ही व्यक्ति जननायक बन निष्कामता से समाज के उन्नयन में सहायक सिद्ध हो उसे सार्थक दिशा देता है और इस प्रकार अमरकीर्ति का अधिकारी बनता है।

हुकम की पालना कर सजनों कैसे ऐसे जननायकों ने अमरकीर्ति प्राप्त करी उसका वर्णन हम आगामी कक्षा में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ से उद्धृत कीर्तन 'हुकम बड़ा बलवान' के माध्यम से करेंगे। तब तक जो आज बताया है ठीक वैसे ही ईश्वर की आज्ञा का पालन करने का अभ्यास करो। इस हेतु खुद को खुद समझाओ और असंयम को विपत्ति का मार्ग जान उसे त्याग दो तथा मन व इन्द्रियों पर संयम स्थापित करने में रत हो जाओ। माना की ऐसा करने पर दुनियावी बातें, इन्द्रिय-विषय चेष्टाएँ जोर मारेंगी परन्तु आपको खुद पर उनको हावी नहीं होने देना अपितु आत्म-नियन्त्रण रखना होगा ताकि कहीं आप उनमें पुनः न उलझ जाओ। इस संदर्भ में सजनों अपने अन्दर ईश्वर मिलन की चाहना पैदा करो। याद रखो चाहना करने वालों को राह अवश्य मिल जाती है। आपकी सच्ची चाहना अवश्य ही आपको इस मृतलोक से उस परमधाम तक पहुँचाने की राह दर्शा आपका जीवन सफल बना देगी।

हुक्म की महानता व महत्ता-3

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,
उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत सप्ताह सजनों हमने जाना कि हुकम का व्यावहारिक रूप क्या है। आओ आज सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ से उद्धृत कीर्तन 'हुकम बड़ा बलवान' के माध्यम से जानें कि हुकम के इस व्यावहारिक रूप को आत्मसात् करने वालों ने कैसे अपने जीवन का वास्तविक प्रयोजन सहजता से समयबद्ध सिद्ध कर, परमेश्वर के हुकम की महिमा गाते हुए, अंत अमरकीर्ति को प्राप्त कियाः-

हुकम की महिमा और हुकम पर चलने वालों की जीत।
सजन दयालु श्री रामचन्द्र जी के मुख के शब्द।
हुकम बड़ा बलवान सब कुछ हुकम करदा,
हुकम बड़ा महान, सब कुछ हुकम करदा।।
हाँ हाँ सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा।
हुकम बड़ा बलवान सब कुछ हुकम करदा,
हुकम बड़ा महान, सब कुछ हुकम करदा।।

अर्थात् परमेश्वर का हुकम यानि विधि का विधान बहुत बलवान व सर्वमहान है। आदि से लेकर अंत तक, इस सृष्टि में सब कुछ प्रभु के हुकम अनुसार ही होता है। अतः इस सत्य को मानो और जन्म-मरण, रोग-सोग, खुशी-गमी, मान-अपमान, अमीरी-गरीबी, हानि-लाभ, संयोग-वियोग, दुःख-सुख, आदि अवस्थाओं में हर्ष-शोक न करते हुए, समचित्त बने रहो। जानो इस प्रकार परमेश्वर के हुकम या आज्ञा का धर्मशास्त्र आदि में बतलाई हुई विधि के अनुसार पालन करने पर ही मानव शक्तिशाली होकर इस जगत में निर्लिप्तता से विचरने में समर्थवान हो सकता है व उचित ढंग से जगत के कल्याण के निमित्त सब कुछ सहजता से कर सकता है। इस तथ्य के दृष्टिगत सजनों कुदरती वेद शास्त्रों में वर्णित परमेश्वर के हुकम रूपी शब्द विचारों को धारण कर वर्त-वर्ताव में लाना सुनिश्चित करो और अपने जीवन में जो कुछ भी करो तद्नुसार ही करो। जानो ऐसा आचरण अपनाना, अपने अंतःकरण को विशुद्ध रखते हुए, निष्पाप जीवन जीते हुए, परमात्म स्वरूप हो जाने की बात है।

हुकम सुजाने हुकम पछाने, हुक्म बड़ा प्रधान, सब कुछ हुकम करदा।
ओ३म् हुकम बड़ा प्रधान ए, हुकम बड़ा प्रधान, सब कुछ हुकम करदा।।

सजनों परमेश्वर कहते हैं कि जो भी उनके हुकम अर्थात् शब्द विचारों के भावार्थों की परख करने की योग्यता रखता है केवल वह समझदार यानि सुजान ही हुकम रूपी उन शब्द विचारों को सर्वोच्च मानते हुए, ईश्वरमय होकर इस जगत में निषंग विचरता है। अतः हे परमात्म स्वरूप इंसानों ! शास्त्रों में वर्णित हमारे आदेशों को ही श्रेष्ठ मानो व केवल उन्हीं को धारण कर, इस जगत में सब कुछ मेरे हुकम अनुसार ही करो। आगे सजनों हुकम विरुद्ध चलने वाले कलुकालवासियों को पुनः सही मार्ग पर लाने हेतु वह कहते हैं कि यह बात तो सर्व विदित है कि सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक जिस मानव ने ही अपने जीवन काल में ईश्वर/परमेश्वर के प्रति अपने वचन पालना का कौल (कथन) एक आज्ञाकारी सपुत्र की तरह, समझदारी से सहर्ष निभाने का पराक्रम दिखाया केवल वह ही श्रेष्ठ युग पुरुष कहलाया। इस संदर्भ में

कुछ ऐसे ही बलवान सजनों का उदाहरण देते हुए वह हमें परमेश्वर के हुकम को मुख्य मानते हुए, उन्हीं की भांति निष्कलंक जीवन जीने के लिए कुछ इस प्रकार प्रेरित कर रहे हैं:-

1.

ध्रुव जी जंगलां विच जा के हुकम लवे पछान रामा हुकम लवे पछान।
दर्शन देखे श्री राम जी दा, अपना आप लवे पछान।।
सब कुछ हुकम करदा, हां हां सब कुछ हुकम करदा।
वाह वाह सब कुछ हुकम करदा,
अपना आप लवे पछान सब कुछ हुकम करदा।।
हुकम मन्ने ध्रुवराज, दर्शन दित्ता है महाराज सब कुछ हुकम करदा।
हां हां सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा ।
दर्शन दित्ता है महाराज सब कुछ हुकम करदा।।

अर्थात् जब धुव्र जी ने जंगलों में जाकर, प्रभु उपासना के दौरान, अपने जीवन काल में प्रभु के हुकम अनुसार क्या-क्या करना है और कैसे करना है, इस रमज़ को पहचान, वैसा ही करना सुनिश्चित कर लिया तो परमेश्वर ने उसके इस दृढ़ संकल्प से प्रसन्न होकर, उसे अपना दर्शन दे अर्थात् साक्षात्कार करा तत्त्वज्ञानी बना दिया ताकि वह हुकम पर अटल बने रह सब कुछ उचित ढंग से करने में समर्थ हो जाए और जगत में अपना नाम रोशन कर ले।

2.

हिरण्यकश्यप प्रहलाद नूं जपन ना देवे राम नाम,
रामा जपन ना देवे राम नाम।
मनयां हुकम प्रहलाद ने,
थम्ब फोड़ निकले श्री राम सब कुछ हुकम करदा।।
हां हां सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा।
थम्ब फोड़ निकले श्री राम सब कुछ हुकम करदा।।

हुकम मन्ने प्रहलाद राज, हिरण्यकश्यप नूं मार।
प्रहलाद नू दित्ता राज सब कुछ हुकम करदा।।
हां हां सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा ।
प्रहलाद नू दित्ता राज सब कुछ हुकम करदा।।

अर्थात् अपनी पूजा-मानता कराने वाला अहंकारी राजा हिरण्यकश्यप अपने ही बेटे को राम-नाम जपने से रोकता रहा। पर फिर भी राम भक्त प्रहलाद हुकम अनुसार उनके प्रति भक्ति भाव में रत रहे। इस अवज्ञा पर जब हिरण्यकश्यप ने भक्त प्रहलाद को दंडित करने का स्वांग रचा तो उसकी रक्षार्थ थम्ब फोड़ श्री भगवान नरसिंह रूप धार प्रकट हो गए और हिरण्यकश्यप का वध कर हर हाल में हुकम पर स्थिर रहने वाले अपने भक्त को राजपाट सौंप दिया।

3.

विश्वामित्र हुकम नूं धार के, जंगल तपस्या करन नूं जावे,
रामा तपस्या करन नूं जावे।
अस्त्र शस्त्र नूं जित के ब्रह्म रूप हो जावे, सब कुछ हुकम करदा।।
हां हां सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा ।
ब्रह्म रूप हो जावे, सब कुछ हुकम करदा।।
हुकम मनयां विश्वामित्र राज,
जित लवे ओ बाजी सोहणा पावे साज, सब कुछ हुकम करदा।
हां हां सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा ।।
जित लवे ओ बाजी सोहणा पावे साज, सब कुछ हुकम करदा।
हां हां सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा ।।

अर्थात् जब विश्वामित्र जी ने हुकम अनुसार परमेश्वर के विचारों/निर्देशों को धारण कर, जंगलों में तपस्या करने जाना स्वीकार लिया तो हुकम की पालना करने के परिणामस्वरूप वह अस्त्र-शस्त्र को जीत कर ब्रह्मरूप हो गए। इस तरह हुकम की मननकारी से विश्वामित्र जी ने अपने जन्म की बाज़ी जीत ली

और सुन्दर व अलौकिक स्वाभाविक साज धारण कर लोक-परलोक में यश प्राप्ति के अधिकारी बनें।

4.

हुकम नाल करे जनक प्रतिज्ञा, हुकम स्वयम्बर दित्ता है रचा, रामा स्वयम्बर दित्ता है रचा।
हुकम धनुष नूं तोड़िया, सीता दा राम नाल कीता विवाह,
सब कुछ हुकम करदा।
हां हां सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा।
सीता दा राम नाल कीता विवाह, सब कुछ हुकम करदा।।
हुकम पाया सीता ने साज,
राम ने असली दित्ता ए राज सब कुछ हुकम करदा।
हां हां सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा।
राम ने दित्ता ए असली राज सब कुछ हुकम करदा।।

यानि परमेश्वर के हुकम अनुसार राजा जनक ने भी अपनी बेटी सीता के विवाह हेतु, शिव धनुष को तोड़ने वाले के साथ स्वयम्बर रचाने की प्रतिज्ञा की और अपनी सौगंध पर खरे उतरने के लिए स्वयम्बर रचा दिया। उधर से जब श्री रामचन्द्र जी ने उस समय के खेल को समझते हुए, परमेश्वर के हुकम अनुसार मर्यादित ढंग से आगे बढ़ धनुष को तोड़ दिया तो राजा जनक ने सीता का विवाह उनके साथ कर दिया। इसके पश्चात् जब सीता ने श्री रामचन्द्र जी के आचार, विचार व व्यवहार को अपने स्वभाव के अंतर्गत कर, ख़ुद को ठीक वैसा ही ढाल लिया तो रामचन्द्र जी ने प्रसन्न होकर हुकम पर चलने वाली सीता को असली राज प्रदान कर दिया।

5.

शिवरी कष्ट उठाये अति भारी,
गुरू जी दे वचन कीते प्रवान रामा वचन कीते प्रवान।

चौदहां साल हुकम ते राहवे, प्रेम दे बेर खाधे श्री राम,
सब कुछ हुकम करदा।।
हां हां सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा।
प्रेम दे बेर खाधे श्री राम, सब कुछ हुकम करदा।।
शिवरी कीता राम नूं याद, राम जी ने पाया शिवरी नूं साज।
हां हां सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा।
राम जी ने पाया शिवरी नूं साज सब कुछ हुकम करदा।।

जैसा कि विदित ही है कि शिवरी ने अपने जीवनकाल में बहुत कष्ट उठाए और अपने गुरु जी के वचन प्रवान कर चौदहां साल अविचलित उन कष्टों को प्रभु का हुकम मान, समर्पित भाव से स्वीकारा तथा अपने ख़्याल को प्रभु के प्रति ध्यान स्थिर रखा। इसी निष्काम तपस्या से प्रसन्न होकर श्री रामचन्द्र जी वनवास के दौरान उसकी कुटिया में गए और उसके प्रेम भरे जूठे बेर प्रसन्नता से खाए। फिर जब शिवरी ने श्री रामचन्द्र जी की छवि को अपनी स्मृति में ले लिया तो उन्होंने हुकम पर स्थिर बनी रहने वाली उस शिवरी को परमात्म स्वरूप से अलंकृत कर उसे महान पद प्रदान कर दिया।

6.

राम नाम रटदियां हुकम मनयां हनुमान रामा हुकम मनयां हनुमान।
भक्ति शक्ति नूं धारण कर के आ मिले श्री राम,
सब कुछ हुकम करदा।
हां हां सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा।
आ मिले श्री राम, सब कुछ हुकम करदा।।
हुकम मनया हनुमान राज सांवले चरणां दा दित्ता ने राज,
सब कुछ हुकम करदा।
हां हां सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा।
सांवले चरणां दा दित्ता ने राज, सब कुछ हुकम करदा।।

अर्थात् अपने प्रभु का हुकम मान जब हनुमान जी ने राम-नाम रटते हुए भक्ति-शक्ति को धारण कर लिया तो श्री रामचन्द्र जी से उनका मिलन अर्थात् संयोग हुआ और उन्होने अपनी अपार कृपा दर्शाते हुए उन्हें अपने सांवले चरणों का राज दे दिया। तभी तो वह अमर शहनशाह आज भी सबसे श्रेष्ठ, विद्वान, गुणवान, बलवान, धनवान, बुद्धिमान व ज्ञानवान माने जाते हैं।

7.

बाली सुग्रीव नूं मारया,
हुकम भटकावे कुल जहान रामा भटकावे कुल जहान।
हुकम राम मिलांवदा,
बाली मार सुग्रीव नूं राज देवन श्री राम, सब कुछ हुकम करदा।
हां हां सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा।
बाली मार सुग्रीव नूं राज देवन श्री राम, सब कुछ हुकम करदा।।
हुकम मनया सुग्रीव राज,
किष्किन्धा दा दित्ता हिने राज, सब कुछ हुकम करदा।
हां हां सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा।

यानि जब अहंकारी बाली ने किष्किन्धा का पूरा साम्राज्य हड़पने के लिए सुग्रीव को मार भगाया तो उस होनी को प्रभु का हुकम मान, सुग्रीव कुल जहान में भटकता रहा पर कदाचित् निराश नहीं हुआ। उसके इस प्रभु हुकम पालन पर अटल बने रहने के फलस्वरूप, कुदरत ने उसे श्री रामचन्द्र जी से मिला दिया और श्री रामचन्द्र जी ने बाली को मार किष्किंधा का राज सुग्रीव को पुनः सौंप दिया।

8.

रावण अधर्मी दा संग छोड़ के,
विभीषण हुकम लवे पछाण, रामा हुकम लवे पछाण।

सांवले चरणां ते करे नमस्कार,
सोने दी लंका बक्षन श्री राम, सब कुछ हुकम करदा।।
हां हां सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा।
सोने दी लंका बक्षन श्री राम, सब कुछ हुकम करदा।।
हुकम मन्ने विभीषण राज,
लंका दा दित्ता ने राज, सब कुछ हुकम करदा।
हां हां सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा।
लंका दा दित्ता ने राज, सब कुछ हुकम करदा।।

अर्थात् राम-रावण के युद्ध के समय, जब विभीषण परमेश्वर का हुकम पहचान गया यानि यह भाँप गया कि उन परिस्थितियों में उसके लिए क्या करना यथोचित है, तो वह रावण अधर्मी का संग छोड़ कर श्री रामचन्द्र जी की चरण-शरण में सच्चे दिल से नतमस्तक हो गया। परिणामतः श्री राम जी ने सोने की लंका पर विजय प्राप्त करने के उपरांत, लोक-लाज की परवाह किए बगैर, हर हाल में परमेश्वर के हुकम पर स्थिर बने रहने वाले विभीषण को, सहर्ष लंका का राज बख़्श दिया।

9.

सुदामा चावलां दी पोटली बांध के हुकम से मित्र मिलया कृष्ण मुरार,
रामा मित्र मिलया कृष्ण मुरार।
कृष्ण प्रेम नाल चरणां नूं धोंवदा,
टोरे चार पदार्थां नाल सब कुछ हुकम करदा।
हां हां सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा।
टोरे चार पदार्थां नाल सब कुछ हुकम करदा।।
हुकम मनया सुदामे राज,
पिंघूड़ियां दे विच झूटे खावे, असली पावे साज।
असली पावे साज सब कुछ हुकम करदा।
हां हां सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा।
असली पाया साज सब कुछ हुकम करदा।।

यानि जब सुदामा अपनी दीन-हीन अवस्था को दृष्टिगत रखते हुए, चावलों की पोटली बाँध कर, हुकम अनुसार अपने मित्र कृष्ण मुरार के दर पर पहुँचा तो सुदामा के आने के भाव व मित्रता की मर्यादा को दृष्टिगत रखते हुए भगवान श्री कृष्ण ने सिंघासन छोड़ उसे द्वार पर खुद ही जा मिलना उचित समझा। तत्पश्चात् अपने मित्र के प्रेमवश, कृष्ण जी ने स्वयं सुदामा के चरणों को धोया और उसे हुक्मानुसार चार पदार्थ देकर वापिस भेजने का प्रबन्ध किया। इस प्रकार जीवन की हर परिस्थिति में हुक्म पर स्थिर बने रहने वाले सुदामा को कृष्ण जी ने आत्मबोध करा दिया। इस पर सुदामा ने प्रसन्न होकर पंघूड़ों में झूटे खाए और अलौकिक आनन्द का अनुभव करते हुए अपने वास्तविक स्थान को प्राप्त कर लिया।

10.

हुकम राम जी आप ही मनया, रावण दा कीता ने संहार,
रामा रावण दा कीता ने संहार।
सुखी वसे सारी नगरी त्रिलोकी दा पाया सिरताज सब कुछ हुकम करदा।
हां हां सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा।
त्रिलोकी दा पाया सिरताज सब कुछ हुकम करदा।।

इसी प्रकार परमात्म स्वरूप श्री रामचन्द्र जी ने खुद भी शब्द ब्रह्म विचारों अनुसार हुकम को मान न्याय की मर्यादा को दृष्टिगत रखते हुए सारे जगत के सुख के निमित्त रावण अधर्मी का संहार किया और इस प्रकार त्रिलोकी का सिरताज पा त्रिलोकीनाथ कहलाए।

अंत में सजनों युग-युगान्तरों से, शब्द ब्रह्म विचार के रूप में, कुदरती वेद-शास्त्रों में विदित, परब्रह्म परमेश्वर के हुकम को पहचान कर, उस हुकम पर स्थिरता से बने रहने वालों को परमपद जैसी सर्वोत्तम उपलब्धि प्राप्त होते देख श्री रामचन्द्र जी कलुकालवासियों को वैसा ही निष्कपट व विचारयुक्त जीवन जीने के प्रति जागरूक करते हुए कहते हैं कि:-

हुकमे अन्दर हुकमे बाहर, हुकम नाल करे प्यार रामा हुकम नाल करे प्यार।
हुकमे मौजां माणियां, हुकम ही चले नाल, सब कुछ हुकम करदा।।
हाँ हाँ सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा,
हुकम ही चले नाल, सब कुछ हुकम करदा।
हुकम ते जेहड़े चल बसे, ओ बाज़ी लवण जित्त, रामा बाजी लवण ओ जीत।
ओ हार कदे नहीं खांवदे, उन्हां दी जित जित ही जित, सब कुछ हुकम करदा।

यानि अंतः व बाह्य जगत में विचरते समय जो प्रभु के हुकम रूप शब्द ब्रह्म विचारों को धारण कर स्नेहपूर्वक अपने मन-वचन-कर्म द्वारा यथा प्रदर्शित करता है केवल वही मानव ही इस जगत में मौजें मानता है। इस प्रकार परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन करते हुए अंत वह अपने सच्चे घर पहुँच विश्राम को पाता है। इस संदर्भ में याद रखो कि जिन्होंने भी जीवन की प्रत्येक अच्छी-बुरी परिस्थिति में समरस रह, प्रभु हुकम पालना पर सुदृढ़ता से बने रहने का पुरुषार्थ दिखाया, केवल उन्होंने ही अपने जन्म की बाज़ी जीती और इस प्रकार कभी भी जीवन में हार का सामना न करते हुए सदा हर क्षेत्र में विजय ही विजय प्राप्त की।

हुकमे सुणो ते हुकमे मन्नो, हुकम करो प्रवान, रामा हुकम करो प्रवान।
हुकम संग ही चलना, हुकम है श्री राम सब कुछ हुकम करदा।
हाँ हाँ सब कुछ हुकम करदा, वाह वाह सब कुछ हुकम करदा।
हुकम है श्री राम सब कुछ हुकम करदा।

अतः वह सबको इस मंगलकारी चलन अपनाने के प्रति प्रेरित करते हुए कहते हैं कि परमेश्वर के हुकम को ध्यान से सुनो तथा उनको यथा मान, प्रवानगी द्वारा अपने स्वभाव के अंतर्गत कर लो। इस प्रकार इस मिथ्या जगत में प्रभु के शास्त्र विदित वचनानुसार यथा चलते हुए हुकम की रमज़ पहचान लो अर्थात् आत्मबोध कर लो। ऐसा कर पाना सुनिश्चित करने के लिए वह कहते हैंः-

वाद विवाद किसे नाल न कीजे, जिह्वा राम नाम रस पीजे।

अर्थात् किसी के भी साथ वाद-विवाद अर्थात् तर्क वितर्क मत करो अपितु हर समय परमेश्वर के ही हुकम पर स्थिर बने रह उन्हीं के ही गुण गाओ और जीवन का आनन्द उठाओ।

ऊपरवर्णित विवेचना से सजनों स्पष्ट होता है कि जिन्होंने भी आत्मनिष्ठा से हुकम की पालना करी, प्रभु ने उन्हीं को पूर्ण बना कर उनका जीवन संवार दिया व अपने में मिला लिया। इस महत्ता के दृष्टिगत सजनों आप भी हुकम की पालना के प्रति कटिबद्ध यानि उद्यत हो जाओ और इस प्रकार जन्म से पूर्व जो परमात्मा को वचन दिया है, उस पर खरे उतर यश कीर्ति कमाओ।

आप सबकी जानकारी हेतु अगले सप्ताह हम इसी वचनबद्धता के विषय में बातचीत करेंगे।

दिनाँक 31 मार्च 2019 का सबक़

परमपद प्राप्त करने हेतु हुकम की महानता व महत्ता-4 (वचनबद्धता)

साडा है सजन राम, राम है कुल जहान
अर्थात्
ईश्वर हमारा मित्र/प्रियतम सर्वव्यापक है,
उसी को जानो, मानो व वैसे ही गुण अपनाओ।

शब्द है गुरु, शरीर नहीं है,
अर्थात्
ज्ञानी को नहीं ज्ञान को अपनाओ और निमित्त में नहीं नित्य में श्रद्धा बढ़ाओ।

इस पर सुदृढ़ता से डटे रह, इस अटल सत्य पर स्थिर बने रहोः-
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा

गत सप्ताहों में सजनों हमने जाना कि हुकम अनुसार ही जीव में जीवन का संचार होता है तथा उसी के हुकम से ही समस्त प्राणी क्रियाशील होते हैं। इसी के साथ हमने यह भी जाना कि जब उस सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान व सर्वज्ञ परमेश्वर ने इस परिवर्तनशील सृष्टि को रचने उपरान्त मानव रूप जैसी उत्कृष्ट कृति को बनाया और उसमें जीवन का संचार किया तो उसे भौतिक जगत रूपी कर्म क्षेत्र में भेजने से पहले सदाचारिता परिपूर्ण मानवीय व्यक्तित्व के धर्म अनुकूल सत्यता व सुदृढ़ता से बने रहते हुए वैसा ही विवेकपूर्ण आचार-व्यवहार करने का आदेश भी दिया ताकि वह सदा आत्मतुष्ट रहे। इस प्रकार वह स्थिर बुद्धि, सदा मानसिक तौर पर निरोग अवस्था को प्राप्त रहे और उसके लिए ख़्याल ध्यान स्थिर रख, मन को प्रभु में लीन रखना सरल हो जाए। फलतः उसके लिए आत्मस्मृति में बने रह उसी के हुकम अनुसार, उसी के प्रति समर्पित भाव व सत्य-निष्ठा से अपने जीवन के सभी कर्त्तव्य अकर्त्ता

भाव से धर्म संगत करते हुए यश-कीर्ति को प्राप्त होना व अपने सच्चे घर परमधाम लौट विश्राम को प्राप्त होना सहज हो जाए। इसी तथ्य के दृष्टिगत सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया हैः-

इको वचन इको दी पालना करो मजबूरी,
न होगी ओ पीरी न होगी वजीरी।।

इस प्रकार सजनों परमात्मा के हुकम अनुसार जीव ने रात्रि रूपी जीवन के पहले प्रहर में माँ के गर्भ में प्रवेश किया और आजीवन उसी के हुकम के अन्दर ही बने रहते हुए, उसकी यथा पालना के प्रति वचनबद्धता का आश्वासन दे, इस अनमोल मानव जीवन को धारण किया। इस संदर्भ में सजनों विडम्बना की बात यह है कि गर्भाकाल के दौरान तो जीव को इस तथ्य की याद रही परन्तु जन्मोपरांत, माया और माया के कार्यों से सम्बन्धित हो जाने पर वह अविद्या के कारण, अन्तर्यामी परमेश्वर, उसके परम आदेश व उसकी पालना के संदर्भ में स्वयं द्वारा दिए गए अनमोल वचन को भूल गया। इस प्रकार वह पंच तत्त्वों व मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार व इन्द्रियों के सहयोग से निर्मित इस क्षणभंगुर शरीर को ही अपना वास्तविक स्वरूप समझकर उसी में आसक्त हो, परमार्थ के रास्ते पर बने रह परोपकार कमाने के स्थान पर, अविचारी इंसान की तरह नश्वर विषयों की प्राप्ति में जुट गया। ऐसा अनिष्ट होने पर विषयों की विकृतियों यानि काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार ने उसे घेर लिया और वह निजी आशा-तृष्णा की तृप्ति हेतु स्वार्थपरता को महत्त्व दे, नाना प्रकार के सकाम कर्म, कुकर्म व अधर्म करने लगा। जैसा कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा भी गया हैः-

मैं भेजया मृतलोक विच तैनूं,
गर्भ विच तैं याद कीतोई बाहर याद न कीता तैं मैनूं।।
हौं मैं दा तैनूं रोग लगा हाई, मोह माया दी फाँसी।
गूढ़ी निद्रा विच तू सौं गयों, पंज चोर खड़े नी सिरांधी।।
जन्म दी मर्म न जानी, जन्म दी मर्म न जानी।।

स्पष्ट है सजनों ईश्वर के हुकम की अवहेलना कर, अनमोल मानव जन्म की मर्म यानि सार न जानने के कारण ही अविचारी जीव को कर्मफल के रूप में सुख-दुःख की पीड़ा भुगतनी पड़ती है जो अपने आप में विवेकशक्ति के क्षीण होने जैसी दुर्भाग्यपूर्ण बात होती है। तभी तो वह जीव शरीरधारी होकर दुर्बुद्धि गँवार इंसान की तरह नादानतापूर्ण इस संसार में इधर-उधर भटकने लगता है। इसी भटकाव के कारण जब उसके लिए ख़्याल ध्यान को स्थिर रख सत्य प्रकाश को ग्रहण करना कठिन हो जाता है तो वह झूठ आधारित जीवन व्यतीत कर अपने जन्म की बाजी हार जाता है। जैसा कि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में परमेश्वर जीव को कहते भी हैं किः-

मैं भेजया हाई तैनू सच वणजन नूं, झूठ दा कीता हेई व्यापार।
डरदा होया मेरे निकट न आवे, भुलिया फिरे गंवार।
ए जिन्दगी तेरी सदा नहीं रहनी, इस नूं लवीं संवार।
जन्म दी मौज न माणी, जन्म दी मौज न माणी।।

सजनों वेद शास्त्रों के अनुसार भी इस प्रकार ईश्वर के वचनों की पालना न करने वाला जीव, गुणों और कर्मों के अनुसार ऐसी अनेक अमंगलमय कर्मगतियों को, उनके फलों को प्राप्त होता है और यथार्थता आत्मरूप से एक होते हुए भी, अज्ञानियों की तरह विवश होकर, जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद जन्म को प्राप्त हो, अपनी प्रालब्ध अनुसार चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है। इसी को भयावह आवागमन का चक्र कहते हैं। उपरोक्त तथ्य को स्पष्ट करते हुए ही सजनों सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

असली स्वरूप नूं भुलिया, मन कई जूनां विच भटकावे।
बुद्धि होई ए करूर तेरी कई वेरी जम्मे ते मरदा राहवे।
कर्मा दे अनुसार जीव चौरासी भुगत भुगत के आवे।
भुलियां रैन विहाणी, भुलियां रैन विहाणी।।

यही नहीं सजनों उपरोक्त के संदर्भ में यदि हम ध्यानपूर्वक इतिहास के गर्भ में व युग पुरुषों के सम्पर्क में आने वाले संगी-साथियों के जीवन काल को भी देखें तो सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार हमें ज्ञात होता है कि द्वापर युग में भी श्री कृष्ण जी के मित्र सजन सुदामा ने वचनों की पालना न करने के कारण भीख माँगी और फिर उसे सही मार्गदर्शन प्राप्त करने हेतु सजन श्री कृष्ण जी के पास आना ही पड़ा। इसी तरह कलियुग में भी मर्दाने ने सजन श्री गुरु नानक जी के वचन न पाले। फिर उसको भी उनके पास आना पड़ा और उसने उनसे सब कुछ पाया। इस तरह ईश्वरीय वचनों की पालना कर वे दोनों ही स्वार्थ की तरफ से सुखी हो गये, और परमार्थ की तरफ से प्रभु से मेल खा गये। इसी संदर्भ में अब आगे सुनोः-

उपरोक्त विवेचना से सजनों ईश्वर के हुक्म के प्रति वचनबद्ध रह उस पर हर हाल में खरे उतरने का महत्त्व समझ में आता है और ज्ञात होता है कि शब्द ब्रह्म विचारों के रूप में वेद-शास्त्रों में कहे हुए ईश्वरीय वचनों को यथा अपने आचरण में उतार परस्पर तद्नुरूप उनका व्यवहार करने व जीवन की हर परिस्थिति में उन पर स्थिर बने रहने पर ही हम संतोषी व धीर बन सकते हैं और परिपूर्णतया समभाव में स्थित हो, निष्कामता से सच्चाई धर्म की राह पर चलते हुए सबके प्रति अपने कर्त्तव्यों का समुचित ढंग से निवर्हन करते हुए, ईश्वर के कर्त्तव्यपरायण परोपकारी सुपुत्र कहला सकते हैं व अपने जन्म की बाजी जीत सकते हैं। इसके विपरीत ईश्वरीय वचन पालना से पीछे हटना, अहंकार प्रवृत्ति में ढल, कर्त्तव्यविमुखता के कारण, फकीरी को प्राप्त हो, अनमोल मानव जीवन हारने की बात होती है। हमारे साथ ऐसा न हो इसलिए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है' :-

महाबीर जी दे वचनां ते चल के ते, अपना आप लवो पछान सजनों।
आप अमर इन्सान ओ अमर होवे, जेहड़ा वचन करे प्रवान सजनों।।

इसी आज्ञा पालन के संदर्भ में ही सजनों तीन प्रकार के इंसानों का जिक्र

करते हुए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में श्री साजन जी भी कहते हैं किः-

तीन प्रकार के पुत्र होते हैं उत्तम, मध्यम, मन्द अधम।
उत्तमः- उत्तम पुत्र पिता का आज्ञाकारी होता है।
मध्यमः- मध्यम पुत्र गिर गिर कर फिर खड़ा होता है।
मन्द अधमः-- मन्द अधम पिता के वचनों के विरुद्ध चलता है।

उत्तम पुरुष महाराज जी को प्यारा है।
इसलिये हमें चाहिए कि हम उत्तम सपुत्र बन के दिखाएं।

ऐसा सुपुत्र बनने हेतु सजनों सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के वचनों की पालना करते हुए नाम, ध्यान और निष्काम रास्ते को पकड़ लो क्योंकि सतवस्तु का कुदरती ग्रन्थ कह रहा है कि ऐसा करने से सारे संकट दूर हो जाएंगे। परिणामतः आत्मानन्द की अनुभूति होगी जो अपने आप में जीत-जीत, फतह-फतह प्राप्ति का सूचक होगी।

निःसंदेह इसके लिए वचन पालना के प्रति सत्यता, ईमानदारी और मानसिक दृढ़ता का होना अनिवार्य है। ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि जो सत्य का धर्मसंगत निष्काम भाव से पालन करते हैं, वे कभी किसी प्रलोभन के वश हो अपने वचन से विचलित नहीं होते। इसी तरह ईश्वरीय वचनों का पालन करते समय मनुष्य को अनेक प्रकार की कठिनाईयाँ सहनी पड़ती हैं, त्याग करना पड़ता है। इस सबके लिये उसे कष्ट उठाना होता है। उस कष्ट को हँस कर सहने हेतु मानसिक दृढ़ता की आवश्यकता होती है। जिसमें दृढ़ता होती है, वह प्रकाशित बुद्धि सारी मुसीबतों का सामना करके भी हर हालत में वचन पालन करते हुए सुकर्म ही करता है। इस संदर्भ में सजनों रामचन्द्र जी का वचनपालन उदाहरण के रूप में हमारे समक्ष ही है जिन्होने ईश्वर का हुकम प्रवान करने हेतु राज्य का लोभ छोड़कर, दुर्गम वनों में जा कर वनवास के कष्ट भोगना उचित समझा। इस पर लक्ष्मण जी ने क्रोध भी किया और

कहा कि भरत से राज्य ले लिया जाए, परन्तु श्री रामचन्द्र जी ने उत्तर दिया कि यह राज्य तो थोड़े दिनों का है, आखिर इसको तो एक दिन छोड़ना है, अगर हमने भरत के साथ विरोध किया तो दुनियां वाले कहेंगे कि श्री रामचन्द्र जी आत्मिक ज्ञान पाकर भी अपने स्वभावों पर स्थिर न रहे। इसलिए उन्होंने धर्म सच्चाई को न छोड़ा। इस तरह सजनों हुकम पर खड़े होने पर जब वह सुदृढ़ता से सच्चाई धर्म पर अटल हो परोपकार कमाने में सफल हो गए तो उन्हें फिर वह राज्य गद्दी मिल गई। सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ के अनुसार यह है सबसे उत्तम। उत्तम का सीस ताज सुकर्म, उत्तम का अटल राज सुकर्म, सुकर्मों में उत्तम जकड़ता है। दुःख कलेश कष्टों के आने पर भी सुकर्म नहीं छोड़ता अपितु सच का वर्त-वर्ताव करता है। सुकर्मों को धारण करके फिर वह किसी से नहीं डरता है। फिर वह किसके आगे मस्तक झुकाए। जो नाम है वही शब्द गुरु है तो फिर वह भेंटा किसको चढ़ाए। इस तरह त्रिकालदर्शी बन जाता है। इसी तथ्य के दृष्टिगत सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

धर्म सच्चाई दे रस्ते ते चल गए,
पिता जी दे वचन करन प्रवान।
श्री राम सेवा में सीता लक्ष्मण चल पड़े,
पकड़ लिया शब्द विचार महान।
कोई विरला यत्न करे इन्सान,
कोई विरला यत्न करे इन्सान।।

इस तथ्य को समझते हुए सजनों ईश्वर को दिए वचन अनुसार दुनियां में रह कर धर्म सच्चाई पकड़ो, यश लो अपयश न लो। याद रखो जो ऐसा नहीं करता यानि मानसिक सदृढ़ता के अभाव के कारण, ईश्वरीय हुकम की अवहेलना कर अपनी वचनबद्धता पर खरा नहीं उतरता वह आत्मविश्वास खो, जीवन में आने वाली कठिनाईयों का सामना नहीं कर पाता और वचन पालन से जी चुरा मनमत पर चलने लगता है। यही कारण है कि वह यदा-

कदा स्वार्थ, भय व परिस्थितियों के वशीभूत हो परेशानियों के सामने झुक जाता है और वचनों के विरुद्ध कर्म करते हुए अपना नुकसान आप कर बैठता है। इस बात को समझते हुए ही सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में कहा गया है:-

कई विरले यत्न लड़ावनगे,
पकड़न सतवस्तु दी चाल।
जैं शहनशाह दे वचन प्रवान कीते,
ओ कदे न खासन हार।।

इस महत्ता के दृष्टिगत सजनों आप भी सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के द्वारे पर होने के नाते अपने आपको वह सौभाग्यशाली विरला सजन मानो जो ईश्वरीय वचनों की पालना के लिए हर संभव यत्न कर पाने में सक्षम हो। इसलिए जाग्रति में आ, अंतिम श्वास तक वचन पालना के प्रति सचेतन रह जीवन की हारी बाजी जीत जाओ। ऐसा सुनिश्चित करने के लिए यदि वचनों की पालना करते हुए अपने प्राणों का भी त्याग करना पड़े तो किसी विध् भी मत घबराओ। इस परिप्रेक्ष्य में सदा स्मरण रहे कि वचनबद्ध व्यक्ति की समाज सदैव जय-जयकार करता रहा है। इसलिए मानो कि यश-कीर्ति को शाश्वत बनाये रखने के लिये वचनबद्धता आवश्यक है। यही नहीं वचनपालन मनुष्य की विश्वसनीयता में वृद्धि करके, उसके यश का विस्तार करके और उसे उसकी प्रतिष्ठता के प्रति सचेत करके उसके व्यक्तित्त्व का भी उद्धार करता है। फिर वह वचन पालक अपने वचन से इस प्रकार बँध जाता है कि वह चाहकर भी उसे नहीं छोड़ पाता और ईमानदारी एवं सत्यता से उसका पालन करते हुए सबसे बुद्धिमान कहलाता है। जानो वचनबद्ध लोग स्वभाव से ही धीर, उदार विषम परिस्थितियों में उचित निर्णय लेने वाले होते हैं तथा वचनपालना कर समाज में आदर्श जीवन मूल्यों की स्थापना करते हैं। इस तरह वचनबद्धता द्वारा वह सहज ही अन्य व्यक्तियों से भिन्न और समाज में विशिष्ट तथा सम्माननीय हो जाते हैं और अंत अपना जीवन सफल बना अपने सच्चे घर परमधाम को प्रस्थान कर जाते हैं।

इस संदर्भ में सजनों अगर हमें अपने जीवन से लेश मात्र भी प्यार है और हम हकीकत में सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में विदित आत्मिक ज्ञान की पढ़ाई को विधिवत् अमल में ला, परमपद प्राप्त करना चाहते हैं और परमधाम का नज़ारा व चमत्कार देखना चाहते हैं तो हम मखट्टू पुत्रों को, इस महान व शुभ लक्ष्य की प्राप्ति हेतु परमार्थी पिता सजन श्री शहनशाह हनुमान जी, (जिनकी ताकत के आगे मौत भी काँपती है), की आज्ञाओं का पालन, उनके प्रति एक उत्तम सुपुत्र की तरह अटल विश्वास रखते हुए, निर्भयता से, बिना किसी तर्क-वितर्क के, समर्पित भाव से करना, आरम्भ करना ही होगा।

ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में श्री साजन परमेश्वर स्पष्टतः कह रहे हैं कि वेद शास्त्रों को बनाने व रचाने वाले पुकार-पुकार कर यानि बारम्बार हम सजनों को यह संकेत दे रहे हैं कि अब कलुकाल जाने वाला है और सतवस्तु आने वाली है इसलिए सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की नाम-युक्ति के अनुशीलन द्वारा, उनका संग प्राप्त कर अपना इलाही स्वरूप पहचान लो अर्थात् सतवस्तु को धारण कर लो। इसी परिप्रेक्ष्य में सजन श्री शहनशाह हनुमान जी सभी सभासदों के समक्ष प्रचार करते हुए, सबको इस क्रिया में निपुण बनाने हेतु शब्द विचार पकड़ अपना जीवन बनाने का आदेश दे रहे हैं ताकि सब श्रेष्ठ मानव बन अपना आप पहचान जाएँ और उन्हें किसी विध् भी जन्म की बाजी हार पछताना न पड़े। यहाँ वह हम इन्सानों को बार-बार सचेत करते हुए कह रहे हैं कि वड-छोट, तेरी-मेरी अर्थात् द्वि-द्वेष का भाव त्याग कर इस विचार पर खड़े हो जाओ कि इस भूमंडल में सर्व-सर्व एक ही परमेश्वर व्याप्त है यानि दूसरा और कोई नहीं। इस बात को समझते हुए सजनों सजन भाव अपनाओ। इस तरह अपना जीवन बनाने के प्रति जागरुक रहते हुए सुनिश्चित रूप से सजन श्री शहनशाह हनुमान जी के वचन प्रवान कर, सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित शब्द विचारों को पकड़ना प्रारम्भ कर दो और 'विचार ईश्वर है अपना आप' के भाव पर स्थिरता से खड़े हो एक शक्तिशाली व बुद्धिमान इंसान की

तरह विचारयुक्त सवलड़ा रास्ता अपना लो। यहाँ जानो कि विचारयुक्त रास्ते पर बेखौफा-बेखतरा निरंतर बने रहने हेतु हमें बाल अवस्था का भक्ति भाव छोड़, युवावस्था का भक्ति भाव अर्थात् समभाव समदृष्टि की युक्ति अनुरूप ढल सजनता का प्रतीक बनना होगा। सजनों एकता, एक अवस्था में आने के लिए ऐसा करना आवश्यक मानो।

इस विषय में सजनों अब अगर हकीकत में दिल में परमपद पाने की दिलचस्पी है तो सहर्ष स्वार्थपरता का अविचारयुक्त कठिनाईयों से भरा रास्ता छोड़ परमार्थ के रास्ते पर सुदृढ़ता से आगे बढ़ते हुए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में वर्णित परमेश्वर के मुख की कुदरती वाणी अर्थात् शब्द ब्रह्म विचारों को दिलचस्पी से नियमपूर्वक पढ़ो-समझो व उन्हें ग्रहण कर अपने मन वचन कर्म को विशुद्धता में साधे रखो। निःसंदेह इस हेतु आपको मनमत का त्याग करना होगा और ईमानदारी और सत्यता से ईश्वरीय वचनों की पालना करनी होगी। चाहे पुराने बुरे भाव-स्वभाव जोर भी मारे पर फिर भी उनके काबू नहीं आना होगा। इस तरह गुरुमत अनुरूप जो भी बात किसी के साथ करो, विचार से करनी होगी और विचार से ही उत्तर देना होगा। इस प्रकार विचारवान सुपुत्र की तरह, कुल दुनियां में और जनचर, बनचर, जड़-चेतन में एक प्रकाश समझ कर, इस मन व जगत पर फ़तह पा जाओ तथा जगत विजयी हो परमपद पा यानि अपने वास्तविक स्थान परमधाम को पा जीवन बना लो। जानो सजनों इसी सर्वोच्च परमपद की ओर हमारे ख़्याल और ध्यान को आकर्षित करते हुए सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में परमेश्वर हमें कहते हैंः-

परमधाम है घर हमारा, परमधाम में हम रहते हैं।ॅ
कैसे प्रसन्नता में आए, कैसे ओ सुहाये ओ सुहाये।।
परमधाम दा नज़ारा हमें कैसा लगे प्यारा
रूप रंग न रेखा राहवे, बिन सूरजों उजियाला।
त्रिकालदर्शी ओ नाम कहलाते हैं, कहलाते हैं, कहलाते हैं।।
आहा ओ परमधाम, वाह वाह ओ परमधाम।।

सजनों परमधाम के सुन्दर नजारे को अभिव्यक्त करती हुई यह परम पवित्र वाणी सुनने/पढ़ने के पश्चात् यकीकन ही आपका मन भी उस रूप, रंग, रेखा रहित, जहाँ बिन सूरजों उजियारा है उस अपने वास्तविक अलौकिक घर परमधाम की ओर प्रस्थान करने के लिए लालायित हो उठा होगा। अगर ऐसा ही है और आप वाकई ही इसी जीवन में इस लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हो तो ऐसा सहजता व सरलता से कर पाने के लिए जिन वचनों की पालना करने का निर्देश, सतवस्तु के कुदरती ग्रन्थ में दिया गया है वह इस प्रकार है:-

जानो श्री साजन परमेश्वर कह रहे हैं कि जो आज हम आत्मविस्मृति के कारण तीनों तापों से संतप्त हो अनेकों कष्ट सह रहे हैं उनसे रक्षित रह विश्राम पाने के लिए अविलम्ब सजन श्री शहनशाह हनुमान जी की चरण शरण में आ जाओ। यह शब्द विचार पकड़, तीनों तापों व सभी प्रकार के कर्मकांडों से मुक्त होने की अर्थात् संसारी फुरनों और संसारी बातों का कनरस छोड़ अपने ख़्याल ध्यान को प्रकाश में स्थिर रखते हुए, अपने इलाही स्वरूप में स्थित रहने की बात है। इस शुभ कारज की सिद्धि हेतु श्री साजन जी हमें इस तथ्य से अवगत कराते हुए कह रहे हैं कि याद रखो 'जेहड़े पासे संकल्प उसे पासे दृष्टि'। इसलिए हमारे लिए बनता है कि हम जगत में विचरते हुए इस हितकारी क्रिया को सावधानी से करना सुनिश्चित करें यानि अन्दरूनी व बैहरूनी दोनों वृत्तियों में हमारा संकल्प हर घड़ी प्रभु को लोचे और दृष्टि उनका दर्शन हृदयांगम कर ले। सजनों यही तो ख़्याल ध्यान को अपने सच्चे घर में स्थिर रख एकरस विश्राम अवस्था में बने रहने जैसी उत्तम बात है जिसके लिए मुक्कमल तौर पर त्याग भावना से अपने अन्दर स्वाभाविक परिवर्तन लाना अनिवार्य है।

इस उत्तम अवस्था में निरंतर सुदृढ़ता से बने रहने के लिए सजनों वह परमेश्वर हमें मूलमंत्र आद् अक्षर पर पकड़ रखते हुए 'ये' को पा सर्व सर्व की जानने वाला बनने का आदेश दे रहे हैं ताकि अक्षर की एकरस रटन लगाने

से हमारा हृदय प्रकाशित हो जाए और ऐसा अद्भुत होने पर हम 'विचार ईश्वर है अपना आप' पर सुदृढ़ता से खड़े हो अपनी भूल सुधार जीव, जगत और ब्रह्म के यथार्थ से परिचित हो जाएं। सजनों याद रखो जब 'जो प्रकाश हमने देखा है, वही चमत्कार असलियत मेरा अपना आप है' इस तथ्य को जान जाओगे तो जगत के सब कार्यव्यवहार करते हुए भी आपकी निगाह उस चमत्कार के साथ हमेशा जुड़ी रहेगी। इस अवस्था पर बने रहने पर स्वतः ही अनादि जोत की प्राप्ति हो जाएगी। ऐसी महान प्राप्ति के उपरांत आप ताकतवर होकर सहजता से अपने असली स्वरूप पर खड़े होकर युवावस्था को प्राप्त हो जाओगे। बस फिर तो युवावस्था का भक्ति भाव अपना जप-तप संयम से आजाद हो, आकाशों-आकाश, पातालों-पाताल, सप्तद्वीप-भूमंडल में प्रवेश करते हुए गगनमंडल में स्थिर हो जाओगे। सजनों जानो कि गगनमंडल में स्थिर होना सर्व-सर्व की जानने वाला बन अर्थात् त्रिकालदर्शी हो जगत में अकर्त्ता भाव से निष्कलंक विचरने की बात है। ऐसे पुरुषार्थी इंसान का तीनों तापों का घटता-बढ़ता टैम्प्रेचर समाप्त हो जाता है और उसकी जोत निर्वाण में जगमगा उठती है। तभी तो वह अपने जीवन काल में सर्गुण-निर्गुण के खेल खेलता हुआ, अंत रूप-रंग-रेखा से आजाद हो, परमधाम पहुँच विश्राम को पाता है। यह अपने आप में वज्र अवस्था को प्राप्त होने की बात होती है। इस वज्र अवस्था को प्राप्त करने के पश्चात् इंसान पर कोई ईंट रोड़ा प्रहार नहीं कर सकता। तभी तो उस इंसान को सांसारिक कोई भी परिस्थिति प्रभावित नहीं कर पाती यानि ऐसा ताकतवर इंसान अफुर अवस्था में बने रह बिन खेचलों, बिन तकलीफों जन्म की बाजी जीत लेता है और ज्योति स्वरूप परब्रह्म परमेश्वर नाम कहाता है।

सजनों जानो कि द्वापर युग में इसी युक्ति पर चलकर ही यानि अंतर्मुखी हो परमेश्वर के वचन प्रवान कर, उस एक सर्वव्यापक चमत्कार के साथ निगाह जोड़ने पर ही सजन अर्जुन ने संसारी व परमार्थी दोनों राज्य प्राप्त कर लिए। अतः इस प्रसंग से शिक्षा ले सजनों मान लो कि आज के समयकाल में भी

हम, आप व सब इन्हीं वचनों पर चलकर अपने आप की पहचान कर सकते हैं और अपने जन्म की बाजी जीत अपना जन्म सार्थक बना सकते हैं। इस महत्ता को समझते हुए सजनों सुदृढ़ता से परमेश्वर के वचनों की पालना करना सुनिचित करो और वचन पालना के संदर्भ में उपरोक्त समस्त युक्ति को दृष्टिगत रखते हुए व अपनी यथार्थता को स्वीकारते हुए मानोः-

मैं ब्रह्म हूं
ओ३म् अमर है आत्मा, आत्मा में है परमात्मा
एहो असलियत ब्रह्म स्वरूप प्रकाश है जे ओ मेरा अपना
हम ब्रह्म प्रकाश हम, हम ब्रह्म प्रकाश हां
हम हर अन्दर निवास हम, हम हर अन्दर निवास हां
हम हर अन्दर प्रवेश हम, हम हर अन्दर प्रवेश हां
हम हर अन्दर विशेष हम, हम हर अन्दर विशेष हां
हम ब्रह्म हम, हम ब्रह्म हां

अंत में सजनों पूर्ण सफलता प्राप्ति हेतु अपने इस यथार्थ को स्वीकार लो कि 'मैं ब्रह्म हूँ'। इस तरह ब्रह्म के गुण व ब्रह्म का धर्म अपना कर, ब्रह्म भाव पर खड़े हो जाओ और ब्रह्म भाव अनुसार जगत में सब कुछ करने का पुरुषार्थ दिखा, अपना जीवन चरित्र परम पावन व सुन्दर बना, एक श्रेष्ठ मानव बन जाओ और ब्रह्म नाम कहाओ। आप सब ऐसा करने में कामयाब हो इन्ही शुभकामनाओं के साथ।

निवेदन

इस पुस्तक को और अधिक जीवन उपयोगी बनाने हेतु आपके सुझाव सादर आमन्त्रित हैं।

SATYUG DARSHAN TRUST (REGD.)

ALLEVIATING PHYSICAL, MENTAL AND SPIRITUAL SUFFERINGS OF HUMAN BEINGS.

info@satyugdarshantrust.org | www.satyugdarshantrust.org

Institutions under the aegis of Satyug Darshan Trust (Regd.)

SATYUG DARSHAN CHARITABLE DISPENSARIES & LABORATORIES
Multidiscipline dispensaries, labs & diagnostic centres spread in 15 cities
www.satyugdarshandispensaries.org

SATYUG DARSHAN VIDYALAYA
Nursery-XII, Co-Ed. English medium, residential & day boarding school. Affiliated to CBSE.
www.satyugdarshanvidyalaya.net

SATYUG DARSHAN INSTITUTE OF EDUCATION & RESEARCH
B.Ed. College for Girls. Affiliated to CRS University, Jind.
www.sdier.org

SATYUG DARSHAN INSTITUTE OF ENGINEERING & TECHNOLOGY
UG College, offering B.Tech. and BBA courses. Co-Ed., residential & day boarding facilities. Affiliated to J.C.Bose University of Science & Technology, YMCA, Faridabad.
www.satyug.edu.in

DHYAN KAKSH
World's first School of Equanimity & Even-sightedness. It is open to all age and gender.
www.schoolofequanimity.com

SATYUG DARSHAN SANGEET KALA KENDRA
Imparting true teachings of music and dance, open to all age and gender. 17 Centers in operation. Affiliated to Prayag Sangeet Samiti, Allahabad.
www.satyugdarshansangeet.org

Initiatives of Satyug Darshan Trust (Regd.) on Humanity and Ethics

INTERNATIONAL HUMANITY OLYMPIAD
www.humanityolympiad.org

HUMANITY DEVELOPMENT CLUB
www.awakehumanity.org